इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

एम एच डी-17
भारत की चिंतन परंपराएँ और दलित साहित्य

लोकायत परंपरा (मानवतावादी साहित्य) 2

"शिक्षा मानव को बन्धनों से मुक्त करती है और आज के युग में तो यह लोकतंत्र की भावना का आधार भी है। जन्म तथा अन्य कारणों से उत्पन्न जाति एवं वर्गगत विषमताओं को दूर करते हुए मनुष्य को इन सबसे ऊपर उठाती है।"

— इन्दिरा गांधी

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

"Education is a liberating force, and in our age it is also a democratising force, cutting across the barriers of caste and class, smoothing out inequalities imposed by birth and other circumstances."

– Indira Gandhi

इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

एम एच डी - 17
भारत की चिंतन परंपराएँ और दलित साहित्य

खंड

2

लोकायत परंपरा (मानवतावादी साहित्य)

इकाई 5
चार्वाक / लोकायत दर्शन 5

इकाई 6
मिलिन्द और नागसेन 19

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. ओम अवस्थी
गुरु नानक देव
विश्वविद्यालय, अमृतसर

प्रो. गोपाल राय (सेवानिवृत्त)
सी–3, कावेरी,
इग्नू आवासीय परिसर, मैदान गढ़ी
नई दिल्ली

प्रो. नामवर सिंह (सेवानिवृत्त)
32–ए, शिवालिक अपार्टमेंट
अलकनंदा, नई दिल्ली

प्रो. नित्यानंद तिवारी (सेवानिवृत्त)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. निर्मला जैन (सेवानिवृत्त)
ए–21/71, कुतुब एन्क्लेव
फेज–I, गुड़गांव, हरियाणा

प्रो. प्रेम शंकर (सेवानिवृत्त)
बी–16, सागर विश्वविद्यालय
परिसर, सागर

प्रो. मुजीब रिज़वी (सेवानिवृत्त)
220, जाकिर नगर
नई दिल्ली

प्रो. मैनेजर पाण्डेय (सेवानिवृत्त)
जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रो. रामस्वरूप चतुर्वेदी
3, बैंक रोड, इलाहाबाद

प्रो. लल्लन राय (सेवानिवृत्त)
3, प्रीत विला, समर हिल, शिमला

स्व. प्रो. शिवकुमार मिश्र
गुजरात

स्व. शिव प्रसाद सिंह
वाराणसी

प्रो. सूरजभान सिंह
आई–127, नारायणा विहार
नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण

पाठ लेखक	इकाई संख्या	पाठ्यक्रम संयोजक एवं संपादक
डॉ. निरंजन सहाय महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी,, उ.प्र.	5	**प्रो. विमल थोरात** मानविकी विद्यापीठ इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली
डॉ. अनुराग कुमार महात्मा गाँधी, काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उत्तर प्रदेश	6	

आवरण चित्रकार
सवी सावरकर
नई दिल्ली

सचिवालयी सहयोग
मिथिलेश प्रसाद
मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

मुद्रण निर्माण

सी. एन. पाण्डेय
अनुभाग अधिकारी
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

फरवरी, 2014

© *इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय,* 2014

ISBN-978-81-266-6665-2

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफ (मुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के बारे में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110 068 से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से प्रो. सुनैना कुमार, निदेशक (मानविकी विद्यापीठ) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेजर टाइप सेटिंग : राजश्री कम्प्यूटर्स, वी–166ए, भगवती विहार, (नजदीक सेक्टर 2 द्वारका), उत्तम नगर, नई दिल्ली–110059

मुद्रित–मैसर्स आकाशदीप प्रिंटर्स, 20 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002

खंड 2 लोकायत परंपरा (मानवतावादी साहित्य)

खंड परिचय

'भारत की चिंतन परंपराएँ और दलित साहित्य' पाठयक्रम के इस दूसरे खंड 'लोकायत परंपरा' (मानवतावादी साहित्य) को अध्ययन के लिए उपलब्ध किया है। बुद्ध चिंतन परंपरा के बाद के लोकायतधर्मि अर्थात लोक की चिंता करने वाली ज्ञान की परंपरा से आपको परिचित कर रहे हैं। इस खंड में दो इकाइयाँ है जिन्हें आप निम्नानुसार देखेंगे–

इकाई 5 – चार्वाक/लोकायत दर्शन

इकाई 6 – मिलिंद और नागसेन

जीवन की उत्पत्ति पदार्थ से हुई है, न कि ईश्वरनिर्मित शक्तियों द्वारा जीव सृष्टि का निर्माण हुआ है। इस भौतिकवादी चिंतन के प्रणेता बृहस्पति थे, जिनका जन्मकाल ऋग्वेदकाल माना गया है। सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसार भौतिकवादी ही आमतौर पर लोकायतिक कहलाते थे। बृहस्पति की इस स्थापना को लोकायतों ने विस्तार से प्रतिपादित किया। ब्राह्मण–पुरोहितों के धर्मआधारित वर्चस्व, आडंबर और कर्मकांडों से बहुसंख्यक जनता त्रस्त हो चुकी थी। इन्हें एक ऐसे धर्म और विचार दर्शन की तलाश थी जो उन्हें धार्मिक कर्मकांड, अंधविश्वासजन्य स्थिति से मुक्ति दिला सकें। लोकायतों अथवा चार्वाकों ने ईश्वर, आत्मा, यज्ञ, बलि और अन्य कर्मकांडों को चुनौति देकर प्रगतिशील विचार देकर जनसामान्य के समक्ष एक विकल्प रखा, जो अतीशय लोकप्रिय हुआ। विशेषकर श्रमिकवर्ग, दलितों, व्यापारियों पर इसका विशेष प्रभाव हुआ। चार्वाक लौकिक जीवन से परे पारलौकिक की कल्पना का विरोध करते हैं तथा वर्तमान में जो जीवन हमें मिला है उसका सही मायने में उपभोग अर्थात् सुख, चैन और आनंद से जीवन व्यतीत करने का विचार देते हैं।

ईश्वर के अस्तित्व पर चार्वाकों ने प्रश्नचिह्न लगाया है, उनके अनुसार परमेश्वर को मुक्ति प्रदान करने वाला कैसे कह सकते हैं? चार्वाक इस मत का पूर्णतः खंडन करते हैं। किसी अलौकिक शक्ति के होने की संभावना से वे इंकार करते हैं। उनके मतानुसार जब तक जीवन रहे सुख से जीना चाहिए। स्वर्ग–नरक, पाप–पुण्य, आत्मा–परमात्मा के मिथ्या जाल में फँसकर मनुष्य जीवन कर्मकांडों का निर्वाह करते–करते दुख में अंत हो जाता है। जीवन में यदि हमें वास्तविक सुख प्राप्त करना है तो इस लोक में विश्वास करना चाहिए मोक्ष या स्वर्ग की अवधारणा से मुक्त हो सके तब ही यह संभव है।

लोकायत की ज्ञान परंपरा प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानती है, वे अनुमान और शब्द को (पोथी) प्रमाण मानने से इंकार करते हैं। उनका मानना है कि इंद्रिय संबंध से जीसे जाना जा सकता है, वही सत्य है, केवल वही उपस्थित है। ज्ञान के माध्यम से नहीं जाना जा सकता, उसके अस्तित्व को नहीं मानते। चार्वाक दर्शन प्रत्यक्षवादी है। इसीलिए वह स्पष्टतः भौतिकवाद की घोषणा करता है। उनके मतानुसार पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ही प्रत्यक्ष प्रमाण है, जिससे पदार्थ अथवा मनुष्य शरीर की निर्मिति होती है, इनके विनाश से शरीर का विनाश हो जाता है। इसलिए आत्मा के अस्तीत्व को चार्वाक मतावलंबी नहीं मानते।

प्रसिद्ध इतिहासकार के. दामोदरन ने इस संदर्भ में महत्वपूर्ण टिप्पणी की है, लोकायत प्रणाली ने ब्राह्मणवाद और पुरोहितवाद की इस तीव्र निन्दा से ही संतोष नहीं कर लिया। उसने इस ब्रह्माण्ड के मूल ढाँचे को बौद्धिक रूप से समझने तथा स्वयं जीवन की प्रकृति को समझने का भरपूर प्रयास किया। यदि यह प्रयास न किया होता तो भारत में प्राचीन

विज्ञान की विविध शाखाओं का वैसा उल्लेखनीय विकास न हुआ होता, जैसा हुआ था। उदाहरण के लिए प्राचीन चिकित्सा प्रणाली के महान आचार्य चरक का विचार था कि मनुष्य समय की उपज है और विभिन्न तत्वों के उचित सम्मिश्रण का प्रमाण है। जाहिर था कि पुरोहितवादी रहस्यता पर प्रहार करने वाला यह दर्शन यथार्थवादियों और श्रमशील तबके में काफी लोकप्रिय हुआ।

संवाद की लोकतांत्रिक परंपरा स्थापित करने वाले दार्शनिकों में बौद्ध विचारक राजा मिलिन्द और उनके शिष्य नागसेन का विशेष महत्व है। राजा मिलिन्द और नागसेन के विचार, तर्क और जीवन तथा जगत संबंधित जीज्ञासाओं के वचन 'बौद्ध दर्शन' के विकास में उल्लेखनीय है। इन दोनों के संवाद पर लिखित 'मिलिन्द प्रश्न' पुस्तक आज भी चर्चित है। प्रश्नांकित करने की तार्किक परंपरा और शास्त्रार्थ की मौलिक उद्भावना को समझने और विद्यार्थियों में वैचारिक संवाद का कौशल्य विकसित करने हेतु 'मिंलिद और नागसेन' इस इकाई का अध्ययन सार्थक साबित होगा।

इकाई 5 चार्वाक/लोकायत दर्शन

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 भारतीय दर्शन परंपरा और चार्वाक मत

5.3 नामकरण

5.4 ज्ञान मीमांसा : प्रत्यक्ष ही प्रमाण है

5.5 तत्त्व मीमांसा : भौतिकवाद

5.6 अलौकिकता : परलोक का निषेध

5.7 वेदमत का खंडन और ब्राह्मण सर्वोच्चता का अस्वीकार

5.8 जीवन राग का दर्शन

5.9 लोकायत मत की आलोचना : मूल मंतव्य की उपेक्षा

5.10 लोकमत पर सतत आक्रमण के प्रभाव

5.11 चार्वाक मत का महत्त्व

5.12 सारांश

5.0 उद्देश्य

'भारत की चिंतन परंपराएँ और दलित साहित्य' के खंड दो 'लोकायत परंपरा' (मानतावादी साहित्य) के अंतर्गत पहली इकाई चार्वाक/लोकायत दर्शन पर आधारित है। इस पाठ के माध्यम से आप वर्णवादी आभिजात्य और वेदमत के विरोध में उठे लोकमत के दर्शन की आरंभिक पीठिका से रू-ब-रू होंगे। पारलौकिकता, मोक्ष, पूर्वजन्म, यज्ञ, अनुष्ठानपरक जीवन शैली, वर्णवाद प्रेरित जाति विभाजन आदि पर इस दर्शन में प्रखरता से प्रहार किया गया है। प्रत्यक्ष या इन्द्रिय जगत को ही प्रमाण मानने वाले चार्वाकवादी निरीश्वरवादी हैं। प्रत्यक्ष जगत के अतिरिक्त किसी अन्य जगत में इनकी आस्था नहीं है। सन्यास, आत्मा या मोक्ष में इनका यक़ीन नहीं। उनके प्रखर प्रश्न परंपरावादी दार्शनिकों के लिए बेहद चुनौतीपूर्ण रहे, जैसे - यदि एक सर्वशक्तिमान और दयालु ईश्वर कहीं है तो आम जनसमुदाय का विशाल भाग दुःख एवं क्लेश का जीवन क्यों बिताता है? यदि सर्वज्ञ न्यायपूर्ण ईश्वर है तो समाज में क्रूरता असमानता एवं भेदभाव क्यों व्याप्त है?

वस्तुतः इस दर्शन के प्रति आस्था रखने वाले चिंतकों का यह आह्वान था कि मनुष्य जीवन से प्रेम करना सीखे एवं संसार में ही दुखों से संघर्ष करते हुए अधिकाधिक सुख की प्राप्ति करे। आइए, यह जानने का प्रयास करें कि चार्वाक परंपरा के चिन्तकों ने कैसे समानतावादी, स्वतंत्रतावादी और न्यायसंगत दार्शनिक पीठिका का निर्माण किया। इस

कोई नहीं जिसके पास मृत्यु न जा सके, जब शरीर एक बार जल जाता है, तब इसका पुनः आगमन कैसे हो सकता है? सभी लोग नीति शास्त्र और कामशास्त्र के अनुसार अर्थ (धन संग्रह) और काम (भोग-विलास) को ही पुरुषार्थ समझते हैं, परलोक की बात को स्वीकार नहीं करते हैं तथा चार्वाक मत का अनुसरण करते हैं - इस तरह मालूम होता है, बिना उपदेश के ही लोग चार्वाक की ओर चल पड़ते हैं।"

पर लोकायत के मूल ग्रन्थों और टीकाओं का उपलब्ध न होना या उनका विलुप्त होना एक ऐसी घटना है जिससे रूढ़िवादी धर्म और उससे असहमत चिन्तन प्रणाली के बीच गहरे मतभेद और द्वन्द्व का पता चलता है। साथ ही यह बेहद दुर्भाग्यपूर्ण भी है कि रूढ़िवादी धार्मिक परंपरा ने इसे नष्ट करने या विकृत करने में कोई कसर न छोड़ी। इस संदर्भ में जवाहरलाल नेहरू ने बेहद मूल्यवान विचार 'भारत की खोज' (डिसकवरी ऑफ इंडिया) में प्रकट किया है। नेहरू के अनुसार, नष्ट हुये ग्रंथों में वह समस्त भौतिकवादी साहित्य था जो प्रारंभिक उपनिषदों के काल के बाद रचा गया था। उसका कोई उल्लेख मिलता है तो उसकी आलोचना और भौतिकवादी सिद्धांतों का खंडन करने के पुरज़ोर प्रयासों में ही मिलता है। किन्तु इस बारे में शक की कोई गुंजाईश नहीं कि भौतिकवादी दर्शन का भारत में सदियों तक प्रचलन रहा है और एक समय तो जनता पर उसका बहुत ही शक्तिशाली प्रभाव था। राजनीतिक और आर्थिक संगठन से संबंधित कौटिल्य की सुप्रसिद्ध पुस्तक अर्थशास्त्र में, जिसकी रचना ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में हुई थी, यह कहा गया है कि यह दर्शन भारत के सर्वप्रमुख दर्शनों में से एक था।

ऐसी स्थिति में हमें इस दर्शन के आलोचकों और उन लोगों पर जो इसकी निन्दा करने पर तुले हैं, तथा उसका मखौल उड़ाने और यह सिद्ध करने पर आमादा हैं कि यह कितना हास्यास्पद है, निर्भर रहना पड़ेगा। बेशक यह उस दर्शन का पता लगाने का बड़ा ही दुर्भाग्यपूर्ण माध्यम है। किन्तु उस दर्शन को विकृत करने के उनके अत्यधिक उतावलेपन से ही यह जाहिर हो जाता है कि उनकी नज़रों में यह कितना महत्त्वपूर्ण था। संभवतः भारत में भौतिकवाद की महत्ता को बताने वाले अधिकांश साहित्य को बाद के काल में पुरोहितों ने तथा रूढ़िवादी धर्म में यक़ीन करने वाले दूसरे लोगों ने नष्ट कर दिया था।"

निःसंदेह इस दर्शन की प्रखरता को प्रतिबिंबित करने वाले मूल स्रोतों के नष्ट या विलुप्त हो जाने से बहुत बड़ी क्षति हुई। इस दर्शन प्रणाली को समझने के लिए हमें इनसे गंभीर रूप से असहमत या यह कहें कि इसके विपरीत खेमे में खड़े दार्शनिकों की व्याख्याओं या उद्धरणों पर निर्भर रहना पड़ेगा।

5.3 नामकरण

'लोकायत' एक संस्कृत शब्द है, जिसका अर्थ है इन्द्रिय जगत की ओर प्रवृत्त हुआ। परंपरा के अनुसार इस प्रणाली के मूल प्रणेता बृहस्पति नामक ऋषि ने ऋग्वेद काल में इस विचार का प्रतिपादन किया कि पदार्थ ही प्राथमिक हैं। बृहस्पति के सूत्र विलुप्त हो गये। चार्वाक शब्द चारू (सुन्दर तथा आकर्षक) एवं वाक् शब्द से मिलकर बना है। चार्वाक दर्शन को मानने वाले लोगों ने अपने कुशल तर्कों द्वारा जनता को हार्दिक रूप से आकर्षित किया। इसलिए इस दर्शन के अनुयायियों को चार्वाकवादी कहा गया। यह भी अचरज की बात है कि आरम्भ में आदर्शवादियों ने इस शब्द का प्रयोग घृणा-व्यक्त करने के लिए किया था।

माधवाचार्य कृत 'सर्वदर्शन संग्रह' के भाष्यकार डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' 'चार्वाक दर्शनम्' खंड के पहले श्लोक की व्याख्या करते हुए एक टिप्पणी उद्धृत करते हैं, स्पष्टता के लिए उस उद्धरण को देखा जा सकता है, "शंकर, भास्कर तथा अन्य टीकाकार लोकायतिक नाम देते हैं। लोकायतिक मत चार्वाकों का कोई संप्रदाय है। चार्वाक-चारू

(सुन्दर), वाक् (वचन) मनुष्यों की स्वाभाविक प्रवृत्ति चार्वाक मत की ओर ही है। बाद में उपदेशादि द्वारा वे दूसरे दर्शनों को मान्यता प्रदान करते हैं। दूसरे जीव भी (पशु-पक्षी आदि) की (चार्वाक) (स्वाभाविक धर्म एवं दर्शन) के पृष्ठपोषक हैं।.....'लोकयत' शब्द पाणिनि के उक्थगण (क्रतूक्थादिसूत्रान्तट्ठक 4/2/60) में मिलता है जिसमें 'लोकायतिक' शब्द बनाने का विधान है। षडदर्शन-समुच्चय के टीकाकार गुणरत्न का कहना है कि जो पुण्य-पापादि परोक्षवस्तुओं का चर्वण (नाश) कर दे वही चार्वाक है।"

चार्वाक नामक ऋषि हुए या नहीं, यह विवाद का विषय है। राधाकृष्णन का विचार है, "यदि चार्वाक किसी व्यक्ति विशेष का नाम है तो यह बृहस्पति के शिष्य का हो सकता है। इसे प्रायः एक सामान्य संज्ञावाचक नाम समझा जाता है।" अपने तर्क के प्रमाण के लिए वे मैक्डॉनलकृत 'संस्कृत लिटरेचर' के इस आशय के उद्धरण का उल्लेख करते हैं। तमाम चार्वाक सिद्धान्त इस नाम से ही जाने जाते हैं। यह दर्शन की एक ऐसी प्रणाली है जो लोक अथवा इस जगत में विश्वास करती है और स्वर्ग, नरक अथवा मोक्ष की अवधारणा में विश्वास नहीं करती।

5.4 ज्ञान मीमांसा : प्रत्यक्ष ही प्रमाण है

लोकायतिक या चार्वाकवादी प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानते हैं। वे अनुमान और शब्द को प्रमाण नहीं मानते। उनका मानना है, साक्षात इन्द्रिय संबंध से जो जाना जाता है, वही सत्य है, केवल वही मौजूद हैं। जो प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से नहीं जाना जा सकता, उसका अस्तित्व नहीं है। जो प्रत्यक्ष ही नहीं, उसका अस्तित्व कैसा? अनुमान अथवा प्रमाण कुछ नहीं होता। वे इसे एक दृष्टांत के माध्यम से स्पष्ट करते हैं, जब हम धुएँ को देखते हैं तो हमें साहचर्य या पुराने प्रत्यक्ष अनुभवों की याद द्वारा आग का स्मरण हो जाता है। 'सर्वदर्शन संग्रह' के 'चार्वाक दर्शनम्' के 13वें श्लोक के अनुसार, 'धूमादिज्ञानान्तर-मग्न्यादिज्ञाने प्रवृत्ति : प्रत्यक्षमूलतया भ्रान्त्वा या पूज्यते।' यानी, ''धूमादि जानने के बाद अग्न्यादि जानने की जो प्रवृत्ति (लोगों में देखी जाती) है वह या तो पूर्वकाल के प्रत्यक्ष पर आधारित है (पहले अग्नि को प्रत्यक्ष रूप से देखा था, कुछ देर के बाद धुएँ को देखने से संस्कार जग गया और मनुष्य अग्नि को याद करते हुए प्रवृत्त होता है।'' वे अन्य के साक्षी को मूल्य रूप में स्वीकार नहीं करते। सादृश्य अथवा दृष्टांत अनुमान की व्याख्या नहीं कर सकता और यही कारण है कि अनुमान अयथार्थ है। सादृश्य यदि औचित्य समझा जाय तो यह समझना भी आवश्यक है कि यह केवल विषयगत संबंध है जो केवल आकस्मिक रूप में ही सही ठहर सकता है।

लोकायतिक केवल इन्द्रिय जगत के यथार्थ को ही ज्ञान का प्रकार मानने के कारण मात्र प्रकृति को ही यथार्थ सत्ता के रूप में स्वीकार करते हैं। उन्हें पारलौकिक सत्ता इसलिए स्वीकार नहीं है।

5.5 तत्त्व-मीमांसा : भौतिकवाद

चार्वाक दर्शन प्रत्यक्षवादी है, इसलिए वह स्पष्टतः भौतिकवाद की घोषणा करता है। अन्य शब्दों में, भौतिक जगत के अस्तित्व में ही इनकी आस्था है। माधवाचार्य ने इस दर्शन की तत्त्व मीमांसा को इस तरह प्रकट किया है - "तत्र पृथिव्यादीनि भूतानि चत्वारि तत्त्वानि। तेभ्य एव देहाकारपरिणतेभ्य : किण्वादिभ्यःमदशक्तिवत् चैतन्यमुपजायते। विनष्टेषु सत्सु स्वयं विनश्यति। तदाहुः "विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति, सनप्रेत्य संज्ञास्तीति " (बृह. उप. 2/4/12) तच्चैतन्यविशिष्टदेह एवात्मा। देहातिरिक्ते आत्मनि प्रमाणाभावात्।" अर्थात् "उनके मत (चार्वाकवादी) से पृथ्वी आदि चार महाभूत ही तत्त्व

हैं (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु)। (प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानने के कारण आकाश - तत्त्व को ये स्वीकार नहीं करते क्योंकि आकाश अनुमान द्वारा सिद्ध होता है)। जिस प्रकार किण्व आदि (मादक-द्रव्या) से मादक-शक्ति उत्पन्न होती है, उसी प्रकार शरीर के रूप में बदल जाने पर इन्हीं (चार) तत्वों से चैतन्य उत्पन्न होता है। इनके नष्ट हो जाने पर स्वयं चैतन्य का भी विनाश हो जाता है। ऐसा कहा भी गया है (श्रुति-प्रमाण से भी यही बात सिद्ध होती है) "आत्मा विज्ञान (शुद्ध चैतन्य) के रूप में इन भूतों से निकल कर उन्हीं में विलीन हो जाता है, मृत्यु के बाद चैतन्य (ज्ञान की सत्ता नहीं रहती (बृह. 3 प. 2/4/12) अतएव उल्लिखित चैतन्य से युक्त शरीर को आत्मा कहते हैं। देह के अलावा आत्मा नाम का कोई दूसरा भी पदार्थ है - कोई प्रमाण इसके लिए नहीं।"

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि लोकायत चिंतन ने अपनी असहमतियों के आलोक में प्रतिपक्ष के दर्शन को निर्मित करने के लिए मजबूत पीठिका तैयार की। के. दामोदरन ने इस संदर्भ में काफी महत्त्वपूर्ण टिप्पणी की है। उनका कहना है "लोकायत प्रणाली ने ब्राह्मणवाद और पुरोहितवाद की इस तीव्र निन्दा से ही संतोष नहीं कर लिया। उसने इस ब्रह्माण्ड के मूल ढाँचे को बौद्धिक रूप से समझने, तथा स्वयं जीवन की प्रकृति को समझने का भरपूर प्रयास किया। यदि यह प्रयास न किया गया होता तो भारत में प्राचीन विज्ञान की विविध शाखाओं का वैसा उल्लेखनीय विकास न हुआ होता, जैसा हुआ था। उदाहरण के लिए, प्राचीन चिकित्सा प्रणाली के महान आचार्य चरक का विचार था कि मनुष्य समय की उपज है और विभिन्न तत्त्वों के उचित सम्मिश्रण का प्रमाण हैं।" कहना न होगा रहस्यात्मकता पर प्रहार करने वाला यह दर्शन यथार्थवादियों और श्रमशील तबके में काफी लोकप्रिय हुआ।

बृहस्पति की स्थापना कि 'जीवन पदार्थ से उत्पन्न हुआ है' को चार्वाकवादियों ने अपनी स्थापनाओं से और भी विस्तार दिया। वे विभिन्न मिसालों का प्रयोग कर अपनी बात की सत्यता का विस्तार करते थे। उनके अनुसार चेतना अथवा ज्ञान का उद्भव अचेतन तत्त्वों के मिश्रण से हुआ है, जैसे पान, सुपारी और चूने को मिलाने से लाल रंग का जन्म होता है। वे एक अन्य उदाहरण का भी प्रयोग करते थे, कुछ वस्तुओं को मिलाने से शराब बनती है, जो नशा करती है, जबकि जिन तत्त्वों से मिलकर वह बनती है, उनमें अलग-अलग कोई नशा नहीं होता। इस प्रकार विभिन्न वस्तुओं के विशेष सम्मिश्रण से नशीला पेय शराब तैयार होता है इन उदाहरणों का प्रयोग करते हुए चार्वाकवादी अपनी यह स्थापना पुष्ट करते हैं कि पृथ्वी, अग्नि, जल और वायु में मिलन एक विशिष्ट योग 'प्राण शक्ति' या 'चेतना' को पैदा करता है। इसे ही जीवनी शक्ति कहते हैं। यह जीवंत शक्ति ही आत्मा है और आत्मा शरीर में तभी तक रहती है, जब तक शरीर जीवित रहता है। यह पूर्णतः लौकिक है। चार्वाक किसी भी स्वतंत्र आत्मा के ऐसे अस्तित्व से इन्कार करते हैं, जो अपार्थिव हो। अन्य शब्दों में शरीर के नष्ट होने के साथ आत्मा भी नष्ट हो जाती है।

5.6 अलौकिकता : परलोक का निषेध

चार्वाकवादी अलौकिकता या परलोक के किसी भी सिद्धांत को खारिज करते हैं। उनके अनुसार जीवात्मा एक प्राकृतिक व्यापार हैं। वे इस चिंतन को भ्रांतिपूर्ण मानते हैं कि भविष्य जन्म में या परलोक में जीवात्मा अपने कर्मों का पुरस्कार पाने वाली है। माधवाचार्य 'सर्वदर्शन संग्रह' में चार्वाक की इस मान्यता की पुष्टि बृहस्पति की स्थापना के आलोक में इस प्रकार करते हैं-

"न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा परलौकिकः।"

अर्थात् बृहस्पति ने भी यह सब कहा है -"न तो स्वर्ग है, न अपवर्ग (मोक्ष) और न परलोक में रहने वाली आत्मा"। चार्वाक अलौकिकता या परलोक की अवधारणा पर जबर्दस्त प्रहार करते हैं। पारंपरिक वैदिक दर्शन पर उनकी कठोर टिप्पणियों ने सत्य के जिस पक्ष का आख्यान किया, निश्चित रूप से उसमें धर्म और अनुष्ठान के नाम पर जारी कपटाचारों को खुली चुनौती मिली। राधाकृष्णन ने चार्वाक की स्थापनाओं का विश्लेषण इस तरह किया है, "इस लोक के अतिरिक्त और कोई लोक नहीं-न स्वर्ग है और न नरक ही। ये सब पाखण्डियों के मस्तिक की उपज हैं। धर्म एक मूर्खतापूर्ण मतिभ्रम एवं एक प्रकार का मानसिक रोग है। संसार की व्याख्या के लिए ईश्वर की कोई आवश्यकता नहीं। धार्मिक अंधविश्वासों एवं पक्षपातों के कारण मनुष्यों को दूसरे लोक एवं ईश्वर की कल्पना करने की आदत सी हो गयी है और जब धार्मिक भ्रांति नष्ट हो जाती है तो वे एक प्रकार का अभाव, शून्यता एवं अकेलापन अनुभव करने लगते हैं। प्रकृति को मानवीय उत्कर्ष से कोई मतलब नहीं। यह पाप-पुण्य की ओर से सर्वथा उदासीन है। सूर्य अच्छे व बुरे, पुण्यात्मा और पापात्मा को एक ही समान प्रकाश देता है। यदि प्रकृति में कोई गुण है तो वह इन्द्रियातीत अनैतिकता का है। मनुष्यों में अधिकतर अपनी दुर्बलता के कारण विश्वास करते हैं कि ऐसे देवता हैं जो निर्दोष व्यक्तियों के रक्षक हैं और पाप का बदला लेते हैं, जिन्हें फुसलाया जा सकता है और चापलूसी से प्रसन्न भी किया जा सकता है। यह सब चिंतन के अभाव के कारण है।" चार्वाक संसार की विविधता को स्वयं उत्पन्न हुआ मानते हैं, इसके पीछे वे वस्तुओं के स्वभाव को कारण रूप मानते हैं। अग्नि ऊष्मा है और जल शीतल है, यह उनका स्वभाव को कारण के रूप मानते हैं। वे ईश्वर, मोक्ष, आत्मा की अवधारणा की व्यावहारिक व्याख्या करते हैं:-

> अतएव कटकादिजन्यं दुःखमेव नरकः।
> लोकसिद्धो राजा परमेश्वरः देहच्छेदो मोक्षः।
> देहात्मवादे च 'स्थूलोऽहं, कृशोऽहं, कृणोऽहम' इत्यादि सामानाधिकरण्योपपत्तिः।
> 'मम शरीरम्' इति व्यवहारो राहोः शिरः इत्योदिवदौपचारिकः।।

अर्थात् कटकादि (भौतिक कारणों से) उत्पन्न (भौतिक) दुख ही नरक है (पुराणों में वर्णित कुम्भीपाकादि नरक नाम की कोई वस्तु नहीं)। संसार में स्वीकृत राजा ही परमेश्वर है (संसार का नियन्ता, उत्पत्ति, पालन और संहारकर्त्ता, पुनर्जन्म का प्रदाता ईश्वर नहीं क्योंकि उत्पत्ति आदि तो स्वाभाविक है, पुनर्जन्म है ही नहीं)। (देह ही आत्मा है अतः) देह या आत्मा का विनाश ही 'मोक्ष' है। देह को आत्मा मानने पर ही "मैं मोटा हूँ, मैं दुबला हूँ, मैं काला हूँ" इत्यादि वाक्यों को सिद्ध करना सरल हो सकता है क्योंकि (उद्देश्य और विधेय दोनों का) आधार एक ही हो जाता है। (मैं यानी आत्मा, मोटा यानी देह का गुण)। 'अहं स्थूलः' कहने पर दोनों शब्दों का आधार समान हो जाता है, आत्मा पर शरीर के गुणों का आरोपण हुआ है, इसलिए ऐसे वाक्यों की सिद्धि के लिए हमें आत्मा (अहं) और देह (स्थूलः) को समान समझना होगा। यदि आत्मा-देह एक नहीं है तो 'अहं स्थूलः' वाक्य कैसे बन सकता है? उल्लिखित देहात्मवाद को स्वीकार कर लेने पर समस्या सुलझ जाती है। अस्तु, यदि शरीर आत्मा है तो हमें 'अहं शरीरम्' कहना चाहिए,'मम् शरीरम्' कैसे कहेंगे?

चार्वाक अपने दृढ़ विचारों के साथ जो प्रश्न उठाते हैं वह पारंपरिक दार्शनिक मान्यताओं को प्रखर चुनौती है। पारलौकिकता को सिरे से खारिज करते हुए वे ईश्वर के अस्तित्व को नकारते हुए सवाल उठाते हैं, "यदि एक सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और दयामय ईश्वर कहीं है तो आम जनसमुदाय का विशाल बहुमत दुख और क्लेश का जीवन क्यों बिताता है? यदि एक न्यायपूर्ण ईश्वर कहीं वर्तमान है तो इस समाज में निर्धनों के विरुद्ध असमानता, क्रूरता एवं भेदभाव क्यों व्याप्त है? ईश्वर के अस्तित्व को न तो इन्द्रियों के प्रत्यक्षण के

द्वारा और न तर्क के द्वारा ही सिद्ध किया जा सकता है। अतः वे तर्क करते थे कि ईश्वर जैसी कोई चीज़ नहीं, सर्वोपरि स्रष्टा और इस जगत का नियंता कोई नहीं है।

कहना न होगा परलोक, पूर्वजन्म, मोक्ष आदि के नाम पर फैलाये जाने वाले पाखण्ड को एकबारगी इन क्रांतिकारी विचारों ने तहस-नहस कर दिया। संभवतः इसीलिए इस दर्शन पर इतने प्रहार हुए, जो शोषण, असमानता के पक्षधरों द्वारा अमूर्त और रहस्यवादी दार्शनिक सिद्धांतों के माध्यम से किये गये।

5.7 वेदमत का खंडन और ब्राह्मण सर्वोच्चता का अस्वीकार

मनुष्य जीवन से अथाह प्रेम करने वाले 'लोकायतिक' या 'चार्वाक' पारलौकिक सुख और ईश्वरीय सत्ता को तर्कसंगत ठहराने वाली ज्ञान-मीमांसा का तीव्र विरोध करते हैं। वे वैदिक यज्ञों और ब्राह्मण सर्वोच्चता को अस्वीकार करते हैं। वेदों के रचनाकारों को चार्वाक धूर्त और बगुलाभगत कहते हैं। उनके अनुसार,

"ननु पारलौकिक सुखाभावे बहुवित्तव्ययशरीरायासाध्येऽग्निहोत्रादौ विद्यावृद्धाःकथं प्रवर्तियन्ते?
इति चेत्, तदवि न प्रमाणकोटिं प्रवेशुमि.
अनृत-व्याघात-पुनरुक्तदोषौः दूषिततया वैदिकम्मन्यैरेव धूर्तबकैः परस्परं-कर्मकाण्डवादिभिः
ज्ञानकाण्डस्य, ज्ञानकाण्डप्रामाण्यनादिभिः कर्मकाण्डस्य च-प्रतिक्षिप्तत्वेन,
त्रय्या धूर्तप्रलापमात्रत्वेन, अग्निहोत्रादेः जीविकामात्रप्रयोजनत्वात्।
तथा च आभाणकः अग्निहोत्रं प्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम्।
बुद्धिपौरूषहीनानां जीविकेति बृहस्पतिः।।"

अर्थात् यदि (कोई पूछे कि) पारलौकिक-सुख (का अस्तित्व) न हो तो विद्वान लोग अग्निहोत्रादि (यज्ञों) में क्यों प्रवृत्त होते हैं जबकि उन यज्ञों में अपार धन का व्यय तथा शारीरिक श्रम भी लगता है? - तो, यह (तर्क) भी प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है, क्योंकि अग्निहोत्रादि कर्मों का प्रयोजन केवल जीविका प्राप्ति ही है, तीनों (वेद) केवल धूर्तों (ठगनेवालों) के प्रलाप हैं, क्योंकि अपने को वेदज्ञ समझने वाले धूर्त 'बगुला-भगतों' ने आपस में ही (वेद को) अनृत (झूठा), व्याघात (आपस में विरोध) और पुनरुक्त (दुहराना) दोषों से दूषित किया है, (उदाहरण के लिए) कर्मकाण्ड को प्रमाण मानने वालों (पूर्व मीमांसकों) ने ज्ञानकाण्ड को, और ज्ञानकाण्ड को प्रमाण मानने वालों (उत्तरमीमांसकों, वेदान्तियों) ने कर्मकाण्ड को आपस में दोषयुक्त बतलाया है। ऐसी लोकोक्ति भी है- "बृहस्पति का कहना है कि अग्निहोत्र, तीनों वेद, तीन दण्ड धारण करना (संन्यास लेना) और भस्म लगाना उन लोगों की जीविका (के साधन) हैं, जिनमें न बुद्धि है, न पुरुषार्थ (शारीरिक शक्ति)।"

श्रमविरोधी और रहस्यवादी वैदिक कर्मकाण्डों और बलि की निरर्थकता से चार्वाक या लोकायतिक जनता को आगाह करते थे। धर्म को वे इच्छा शक्ति को कुंठित करने की अवधारणा मानते हैं। पूजा-पाठ, अनुष्ठान से नरक की यंत्रणाएँ कम होंगी और स्वर्ग का सुख हासिल होगा, इसे वे ऐसा तिलस्म समझते थे, जिससे आम आदमी भ्रम में पड़कर कर्मरहित जीवन की ओर बढ़ता है। वें वेदों को सामान्य मानव की रचना ही नहीं, बल्कि उससे भी गयी बीती चीज़ कहते हैं। के. दामोदरन ने उनके विचारों को इस तरह प्रस्तुत किया है, "वेद न केवल सामान्य मानवों की रचना है, बल्कि इससे भी गयी बीती चीज़ है। उन्हें मसखरों, मूर्खों और दैत्यों ने रचा था। वैदिक कर्मकाण्ड और पशु-बलि इत्यादि अर्थहीन थे। पुरोहित कहते थे कि जिन पशुओं की बलि चढ़ाई जाती है, वे यज्ञोपरांत स्वर्ग में पहुँच जाते हैं। अगर बात ऐसी है तो वे अपने माता-पिता को ही यज्ञों में बलि चढ़ाकर

स्वर्ग क्यों नहीं भेज देते? अतः यह सब लालची ब्राह्मणों की ठग-विद्या है, जिससे वे सामान्य जनों को मूर्ख बनाकर धन ऐंठ सकें।"

वैदिक कर्मकाण्ड और ब्राह्मण सर्वोच्चता ने सामान्य और श्रमशील जनता का जीवन दूभर कर दिया था। चार्वाक दर्शन की क्रांतिकारी अवधारणा ने श्रम और जीवन-राग से जुड़े दार्शनिक सिद्धांत को जनता के समक्ष रखा।

5.8 जीवन राग का दर्शन

चार्वाक मानते हैं, सुख और दुख जीवन के अनिवार्य पहलू हैं। यदि कोई विघ्नों के भय से सुखभोग न करे तो वह जीवन से पलायन है। मौत के बाद कोई भी ऐसा लोक नहीं है, जिसके भ्रम या छलावे में पड़कर जीवन सुखों को छोड़ दिया जाय। वे दृष्टांतों के माध्यम से अपनी स्थापना स्पष्ट करते हुए कहते हैं:-

'न च' अस्य दुःख सम्भिन्नतया पुरुषार्थत्वमेव नास्ति" इति मन्तव्यम्।
अवर्जनीयतया प्राप्तस्य दुःखस्य परिहारेण सुखमात्रस्यैव भोक्तव्यत्वात।
तद्यथा-मत्स्यार्थी सशल्कान् सकटकान् मत्स्यानुपादत्ते।
स यावदादेय तावदादाय निवर्तते।
यथा वा धान्यार्थी सपलालानि धान्यानि आहरति, स यावदादय तावदादाय निवर्तते।
तस्माद् दुःखमयात् नानुकूलवेदनीयं सुखं त्यक्तुमचितम्।।"

अर्थात् ऐसा नहीं समझना चाहिए कि दुख से मिलाजुला होने के कारण (सुख) पुरुषार्थ नहीं है, क्योंकि हमलोग (सुख के साथ) अनिवार्य रूप से मिले-जुले दुख को हटाकर केवल सुख का उपभोग कर सकते हैं। (ऐसा कोई सुख संसार में नहीं जो केवल सुख ही हो, दुःख नहीं। वस्तुतः संसार के सभी सुख दुःखों से युक्त होते हैं। ऐसा देखकर भी सुख को पुरुषार्थ समझना चाहिए, क्योंकि सुख-दुःख से भरी वस्तु से दुःख को हटाकर केवल सुख का ही आनन्द लिया जा सकता है। इसके लिए दृष्टांत भी लिया जा सकता है)। जैसे- मछली चाहने वाला व्यक्ति छिलके (scale) और काँटों के साथ ही मछलियों को पकड़ता है, उसे जितने की आवश्यकता है उतना (अंश) लेकर हट जाता है, और जिस प्रकार धान को चाहने वाला व्यक्ति पुआल के साथ ही धान ले आता है, जितना उसे लेना चाहिए उतना लेकर हट जाता है। इसलिए दुःख के भय से (मन के) अनुकूल लगने वाले सुख को छोड़ना उचित नहीं है। वे अन्य जगत् प्रसिद्ध दृष्टांतों का हवाला देते हुए अपनी बात की पुष्टी करते हैं:-

"न ही 'मृगाः सन्ति' इति शालयो नोप्यन्ते।
न हि" भिक्षुका सन्ति इति स्थाल्यो नाधिश्रीयन्ते।
यदि कश्चिद् भीरू : दृष्टं सुखं व्यजेत् तर्हि स पशुवत् मूर्खो भवेत। तदुक्तम्
व्याज्यं सुखं विषयसङ्गमजन्म पुंसां
दु :खोपवृटमिति मूर्खविचारणौ।
व्रीहिञ्जिहासति सितोत्तमतण्डुलाढ्यान्
को नाम भोस्तुषकणोपहितान्हितार्थी।।"

अर्थात् ऐसा नहीं देखा जाता कि हरिण वे खा जाएँगे इसलिए धान ही न रोपें, या भिखमंगे माँगने के लिए आएँगे इसलिए हाड़ियों को चूल्हे पर ही न चढ़ाएँ। लोग यह समझते हैं कि विघ्न अपने स्थान पर हैं, हमारा काम क्यों रुका रहे? यदि कोई डरपोक (उल्लिखित

प्रकार के विघ्नों के भय से) निश्चित सुख को छोड़ देता है तो वह पशु के समान मूर्ख ही है। कहा भी गया है कि, "यह मूर्खों का विचार है कि मनुष्यों को सुख का त्याग कर देना चाहिये क्योंकि उनकी उत्पत्ति (सांसारिक) विषयों के साथ होती है - तथा वे दुख से भरे हैं। भला कहिये तो, (अपनी) भलाई चाहने वाला कौन ऐसा आदमी होगा जो उजले और सबसे अच्छे दाने वाले धान की बालियों को केवल इसलिए छोड़ना चाहता है कि इनमें भूसा और कुण्डा भी है।

इस प्रकार चार्वाकों के लिए आदर्शवादियों की 'मोक्ष' की अवधारणा स्वीकार्य नहीं थी। आदर्शवादी यह मानते थे कि जीवन का उद्देश्य 'मोक्ष' की प्राप्ति है, और मोक्ष का वे अर्थ लेते थे, एक ऐसी स्थिति जिसमें आत्मा सांसारिक बंधनों से पूरी तरह स्वतंत्र हो जाती है और सुख का दुख का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। चार्वाक इस अवधारणा का विरोध करते थे। उनका मानना है कि मानव कभी भी संवेदनाओं अथवा सुख-दुःख से पूरी तरह मुक्त नहीं हो सकते। उनका मानना था, मनुष्य अपने जीवन काल में सुख और दुःख दोनों का अनुभव करते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि दुःखों को कम किया जाय व जीवन के सुखों को बढ़ाया जाय। जीवन को इस संसार में जहाँ तक हो सके सुखी बनाने का प्रयत्न करना चाहिए और मौत के बाद सुख के थोथे भ्रम में ज़ीवन सुखों का त्याग नहीं करना चाहिए। जीवन के बाद की अवधारणा के पक्ष में किये जाने वाले कर्मकाण्डों को वे निरर्थक मानते हुये आदर्शवादी दार्शनिकों को चुनौती देते हैं:-

"पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिटोमे गमियति।
स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते।।
मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम्।
निर्वाणस्य प्रदीपस्य स्नेहः संवर्धयेच्छिखाम्।।
गच्छामिह जन्तूनां व्यर्थ पाथेयकल्पनम्।
गेहस्थकृतश्राद्धेन पथि तृप्तिवारितम्।।
स्वर्गस्थिता यदा तृप्ति गच्छेयुस्तत्र दानतः।
प्रासादस्योपरिस्थानामत्र कस्मान्न दीयते।।
यदि गच्छेत्परं लोकं देहादेष विनिर्मितः।
कस्माद् भूयो चायाति बन्धुस्नेहसमाकुलः।।"

अर्थात् यदि ज्योतिटोम-यज्ञ में मारा गया पशु स्वर्ग जायेगा, तो उस जगह पर यजमान अपने पिता को ही क्यों नहीं मार डालता? मरे हुए प्राणियों को श्राद्ध से यदि तृप्ति मिले तो बुझे हुए दीपक की शिखा को तो तेल अवश्य ही बढ़ा देगा। बाहर जाने वाले लोगों के लिए पाथेय (मार्ग का भोजन) देना व्यर्थ है, घर में किये गये श्राद्ध से ही रास्ते में तृप्ति मिल जायेगी। स्वर्ग में स्थित (पितृगण) यदि यहाँ दान कर देने से तृप्त हो जाते हैं तो महल के ऊपर (कोठे पर) बैठे हुए लोगों को यहीं पर क्यों नहीं दे देते हैं? (यदि आत्मा शरीर से पृथक है और) शरीर से निकल कर दूसरे लोक में चली जाती है तब बन्धुओं के प्रेम से व्याकुल होकर लौट क्यों नहीं आती?

जाहिर है, इन तीक्ष्ण प्रश्नों का कोई उत्तर आदर्शवादी दार्शनिकों के पास नहीं था। वस्तुतः चार्वाक जीवन राग के दर्शन के पक्षधर थे। वे यह मानते थे कि अमूर्त दार्शनिक सिद्धांतो में जीवन समर्पित करने का कोई औचित्य नहीं, लिहाजा जीवन की सार्थकता इसी में है कि बुद्धिमानी पूर्वक संसार के सुख को उचित साधनों जैसे- कृषि, पशुपालन, राजनीति, प्रशासन इत्यादि के द्वारा प्राप्त किया जाय।

5.9 लोकायत मत की आलोचना : मूल मंतव्य की उपेक्षा

लोकायत मत का आम आदमी पर जबर्दस्त प्रभाव पड़ा। तत्कालीन समाज की जो ताक़तें प्रगतिशील थीं और प्रतिगामी ताक़तों से संघर्ष कर रही थीं, उनके लिए चार्वाक दर्शन की पीठिका ने तीक्ष्ण हथियार उपलब्ध कराया। जाहिर था प्रतिगामी शक्तियों ने इस मत की आलोचना में कोई कसर न छोड़ी। लोकायत दर्शन के वस्तुपरक चिन्तन को विकृत रूप में पेश किया गया। इस दार्शनिक प्रणाली के मूल ग्रन्थों का उपलब्ध न होना, इस तथ्य का मजबूत और निर्द्वन्द्व प्रमाण है कि रूढ़िवादियों ने इसे हर सूरत में नष्ट करना चाहा। लेकिन यह तथ्य है कि इस दार्शनिक प्रणाली का भारतीय सामाजिक जीवन पर जबर्दस्त प्रभाव पड़ा। के. दामोदरन ने इस मत की आलोचना करने वाले आदर्शवादी दार्शनिकों पर बेहद सटीक टिप्पणी की है। उनका कहना है, "इन ग्रन्थों के नष्ट होने से भारतीय दर्शन के इतिहास की निःसन्देह भारी क्षति हुई है। कारण यह कि इस महान दार्शनिक प्रणाली के अध्ययन के लिए, जिसका भारत के सामाजिक जीवन पर इतना जबर्दस्त प्रभाव था, हमें आज इस प्रणाली के कट्टर दुश्मनों द्वारा प्रस्तुत की गयी व्याख्याओं पर ही निर्भर रहना पड़ता है। इन शत्रुतापूर्ण टीकाकारों ने लोकायत को एक नकारात्मक दर्शन बताया है जो तमाम नैतिक संहिताओं का विरोधी था, जो भ्रष्ट भौतिकवाद से ओतप्रोत था और जनता को यह परामर्श देता था कि लौकिक सुखों का अनियंत्रित आस्वादन करने के लिए दूसरों से धन उधार लेना भी बुरा नहीं है। इस तरह हमें इस स्थिति में पहुँचा दिया गया है कि लोकायत के बारे में सच्चाई को खोजने के लिए हमें उस पर उछाले गये कीचड़ के दलदल में डूबना पड़ता है।"

इस प्रकार वेद मतावलंबियों द्वारा इसका निरंतर उपहास किया गया। इसे विकृत रूप मे पेश किया गया। इसके मूल मंतव्य की उपेक्षा की गयी। इसे 'खालिस भौतिकवादी' दर्शन साबित किया गया। जबकि यह 'भौतिकवाद' आज की भौतिकवादी अवधारणा से एकदम अलग है। यह भौतिकवाद अवाम के सरोकारों, उनकी तक़लीफों और संघर्षों से जुड़ा है। इस दर्शन को देशकाल निरपेक्ष एक ऐसे दर्शन में स्थापित करने की मुहिम चलायी गयी जो समाज निरपेक्ष हो तथा स्व की दुनिया या व्यक्तिगत स्वार्थ की चौहद्दी में मुग्ध रहे। यह समझना आसान है कि आज हम जिसे भौतिकवाद समझते हैं, वह बाज़ार-तंत्र से गहरे स्तर पर जुड़ा है व आम आदमी के सरोकारों के एकदम प्रतिकूल है। लोकायत चिंतन की स्थापनाएँ कर्मकाण्ड को खारिज कर, श्रम के सौन्दर्यशास्त्र को जीवन की मुलभूत समझ के रूप में प्रस्तावित करती है।

एवः प्रसिद्ध उक्ति की चर्चा द्वारा इस संस्कृति की आलोचना की जाती है, वह यह कि लोकायत या चार्वाक सिद्धान्त की एक प्रमुख अवधारणा यह भी है कि, "जब तक जीवन है, मनुष्य को सुखपूर्वक जीना चाहिए, खूब घी पीना चाहिए, भले ही इसके लिए ऋण क्यों न लेना पड़े।" पर जैसा कि पहले भी उल्लेख किया जा चुका है, इस दर्शन का आधार ग्रन्थ 'बृहस्पति के सूत्र' अनुपलब्ध हैं, हो सकता है इस संस्कृति की तीव्र भर्त्सना के लिए इस सिद्धान्त को गढ़ा गया हो। यह अकारण नहीं कि भारतीय दर्शन के पाश्चात्य मर्मज्ञ रीज़ डेबिड्स, 'डायलॉग्स ऑफ बुद्ध' में चार्वाक सिद्धान्त पर टिप्पणी करते हैं, 'एक ऐसी दर्शन पद्धति जिसे शताब्दियों तक गंभीर रूप से मान्यता प्राप्त रही हो, इतनी अधिक असंस्कृत तो नहीं हो सकती।' अगर यह मान भी लें कि उल्लिखित कथन चार्वाक दर्शन का ही एक भाग है, तब भी इस दर्शन की उपादेयता सिर्फ एक कथन के आधार पर खारिज नहीं की जा सकती।

लोकायत दर्शन ने भारत में रूढ़िवाद की जड़ को हिलाकर रख दिया था। इसके क्रांतिकारी स्वरूप का पता राधाकृष्णन की इस टिप्पणी से लग सकता है कि, "पुराने रूढ़िप्रधान एवं जादू में विश्वास करने वाले धर्म को निकाल-बाहर करने के लिए भौतिकवाद को बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ा। विद्यमान संस्थाओं को, जिन्हें समय की मान्यता प्राप्त थी और जो जनसाधारण के स्वभाव में अंतर्विनिष्ट हो गयी थीं, उन्नत करने के लिए किए गये कितने भी उदार प्रयत्न सर्वथा निःप्रभाव सिद्ध होते, यदि शताब्दियों की उदासीनता एवं अंधविश्वास को चार्वाक संप्रदाय सरीखे एक विस्फोटक बल के साथ एक साथ न हिला दिया गया होता।"

5.10 लोकमत पर सतत आक्रमण के प्रभाव

चावार्क दर्शन जैसे लोकवादी चिंतन पर सतत आक्रमण का यह परिणाम हुआ कि रुढ़िवादी एवं चमत्कार में विश्वास करने वाली प्रतिगामी दार्शनिक अवधारणाएँ सतत् मजबूत होती गयीं। विभिन्न संप्रदायों में बँटे समाज की खाइयों को वर्णवादी पौरोहित्य प्रेरित चिन्तन ने और भी बढ़ाया। लोकायत चिंतन ने एक साथ वर्ण की अवधारणा, अलौकिक ईश्वर के रहस्य, मोक्ष की अवधारणा, यज्ञ, बलि व कर्मकाण्ड की निरर्थकता, वैदिक कर्मकाण्ड प्रेरित रहस्यवाद आदि पर कठोर प्रहार किया और एक ऐसे दार्शनिक चिंतन की मुहिम चलायी जो यथार्थ, व्यावहारिक, लौकिक कर्मों और श्रम के सौन्दर्यशास्त्र से संचालित हो।

चार्वाक दर्शन ने ब्राह्मणवाद और पुरोहितवाद के आधारभूत सिद्धान्त को उखाड़ फेंकने के व्यावहारिक, तर्काश्रित और विवेकपूर्ण दार्शनिक सिद्धान्त को प्रस्तावित किया। लेकिन कर्मकाण्डियों या आदर्शवादियों ने इस लोकमत पर सतत् आक्रमण किया और स्वार्थी व लंपट सत्ताधीशों ने उनकी भरपूर सहायता की। आस्था की आड़ में विवेक को नेपथ्य में निर्वासित कर दिया गया। जाहिर है लोकमत पर सतत् आक्रमण का परिणाम यह हुआ कि लोकविरोधी और दैवी हस्तक्षेप का पाखंड रचने वाली दार्शनिक मान्यताओं को समाज में उत्तरोत्तर केन्द्रीयता हासिल होती गयी।

5.11 चार्वाक मत का महत्व

चार्वाक मत का जन्म एक ऐसे काल में हुआ, जब ब्राह्मण-पुरोहित 'अनुमिति' और 'शब्द' जैसे अपने प्रमाणों को वर्ण-जाति, बलि-यज्ञ, कर्मकाण्ड आदि से न्यायसंगत साबित करना चाहते थे। उन्हें चुनौती देना चार्वाकों या विवेकवादियों के लिए आवश्यक हो गया था, जो तत्कालीन समाज के लिए जीवनवायु की तरह था। आदर्शवादी दार्शनिकों का कारगर ढंग से मुकाबला करने के लिए यह भी जरूरी था कि उनकी ज्ञान मीमांसा पद्धति या अवधारणा के प्रतिपक्ष में मजबूत दार्शनिक सिद्धांत व विश्लेषण प्रस्तुत किया जाय। इस संघर्ष का परिणाम यह हुआ कि चार्वाकों या लोकायतों ने ज्ञान के भौतिकवादी सिद्धांत का विकास किया। आत्मा, आवागमन, मुक्ति या मोक्ष, ईश्वर बलि, यज्ञ, कर्मकाण्ड आदि प्रेरित ब्राह्मण-पुरोहित आधिपत्यवादी दर्शन को चुनौती देने वाले या उनसे असहमत होने वाले संघर्षरत आम जन को इस दर्शन ने धारदार हथियार उपलब्ध कराया। आबादी के बहुत बड़े हिस्से पर विशेषकर दलित हिस्से पर और एक हद तक व्यापारियो और क्षत्रियों पर इस दर्शन का गहरा प्रभाव पड़ा। इस मत की महत्ता और लोकप्रियता का अंदाजा इससे भी लगाया जा सकता है कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राजकुमारों को निर्देश दिया गया कि वे सांख्य और योग प्रणालियों के साथ-साथ लोकायत दर्शन का भी अध्ययन करें।

लोकायत चिंतन ने अंधविश्वास और मानवीय क्रिया-कलापों में दैवी-हस्तक्षेप के विचारों को ठुकरा दिया। अंधविश्वास की बेड़ियों को इस दर्शन ने छिन्न-भिन्न कर दिया और जनता को संदेश दिया कि मौत के बाद किसी दूसरे संसार में सुख की आशा करना न केवल निरर्थक है अपितु मूर्खतापूर्ण भी। सुख और दुःख से भरे जीवन में दुःखों को कम करने का उपाय करना चाहिए। सुख को इस धरती पर ही प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। 'भारतीय चिंतन परंपरा' में के. दामोदरन ने इस दर्शन पर काफी महत्त्वपूर्ण राय दी, "लोकायत दर्शन एक प्रगतिशील, आशावादी दर्शन था। उसने, दरअसल, न केवल परिकल्पना के महान सृजनात्मक प्रयासों के लिए, बल्कि जनता की भौतिक खुशहाली और सांस्कृतिक प्रगति के लिए भी, रास्ता तैयार किया। जैसाकि दक्षिणरंजन शास्त्री (ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ इंडियन मैटीरियलिज्म एण्ड हेडोनिज्म) ने कहा है, "लोकायत दर्शन के अनुयायियों ने जब सुसभ्य तथा सामान्य लोगों के हृदयों में घर बना लिया, तो इन सबने मिलकर अपनी तात्कालिक ख़ुशहाली के लिए इस जगत में ही प्रयास करना शुरू किया। इस आंदोलन के फलस्वरूप ही विविध कलाओं और विज्ञान को भरपूर प्रोत्साहन मिला। कोई आश्चर्य नहीं कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राजकुमारों को निर्देश दिया गया है कि वे सांख्य और योग प्रणालियों के साथ-साथ लोकायत दर्शन का भी अध्ययन करें।"

ईसा पूर्व आठवीं और छठी शताब्दी के मध्य उल्का पिंड की तरह इस क्रांतिकारी दार्शनिक चिंतन ने आगामी मानवतावादी साहित्य के लिए एक मजबूत पीठिका उपलब्ध करायी।

5.12 सारांश

ईश्वर, धर्म, पोथी और कर्मकांड के विरोध में खड़े चार्वाक मूलतः घोर भौतिकवादी विचारधारा के प्रवर्तक थे। बुद्ध के अनात्मवाद सिद्धांत को मानने वाले चार्वाक (लोकायत) वेदमत और वर्णवादी आभिजात्यवाद के प्रखर विरोधक थे क्योंकि वे पूर्वजन्म, यज्ञ, अनुष्ठानपरक जीवन शैली, वर्णवाद प्रेरित जाति विभाजन आदि वैदिक दर्शन को मूर्खों का प्रपंच मानते थे। इसके लिए उनके पास सशक्त तर्क था जो विज्ञानवादी चेतना का विचार था। प्रत्यक्ष या इन्द्रिय जगत को ही प्रमाण मानने वाले चार्वाकवादी निरीश्वरवादी हैं। चार्वाक समतावाद के एक प्रखक प्रवक्ता थे, उनके दर्शन में जीवन के प्रति दृष्टिकोण प्रेम और जीवन का भरपूर आनंद लेकर जीवन के प्रति आसक्ति का रहा है। जब तक जीवन रहे सुख से जीना चाहिए।

किसी पारलौकिक शक्ति अथवा सत्ता को वे स्वीकार नहीं करते अर्थात् ईश्वर के अस्तित्व को वैदिकों द्वारा फैलाया भ्रमजाल मानते हैं। प्रत्यक्षवादी को प्राण मानने वाले चार्वाक वैदिकों के बीच अतीशय अलोकप्रिय रहे हैं, उनकी एक भी रचना का उपलब्ध न होना, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

आत्मा अर्थात् जीवन–शक्ति के अस्तीत्व को वे तभी तक मानते हैं जब तक शरीर जीवित रहता है, वे स्वतंत्र आत्मा के ऐसे अस्तित्व से इंकार करते हैं तो अपार्थिव हो। स्पष्टवादी चार्वाक की इस स्थापना से कि स्वर्ग अथवा नरक की कल्पना एक मात्र भ्रम है, यह पाखण्डियों के मस्तिष्क की उपज है। जो कुछ अस्तित्व में है वह मात्र लोक के अतिरिक्त कुछ नहीं। पारंपरिक दार्शनिक मान्यताओं को प्रखर चुनौती देने वाले चार्वाक दृढ़ता के साथ पाखंड, कर्मकांड, मोक्ष, पुनर्जन्म तथा ईश्वर की कल्पना का खंडन करते हैं।

वैदिक परंपरा में यज्ञवेदी पर हजारों पशुओं की बली देकर मोक्ष पाने की पाखंडी कल्पना के विरोध में पुरोहितों से वे प्रश्न करते रहे कि यदि पशुओं कि बलि देकर स्वर्ग में पहुंचने

की वृथा कल्पना करते हो तो क्यों नहीं अपने माता–पिता को ही यज्ञों में बलि चढ़ाकर उन्हें स्वर्ग भेज देते? अतः यह ब्राह्मणों की ठग विद्या थी जिससे वे सामान्य जनों को लुटते रहें।

चार्वाक मत सामान्य जनों में अतीशय लोकप्रिय था, इसलिए प्रतिगामी शक्तियों द्वारा इस दर्शन की आलोचना करने में कोई कसर नहीं छोड़ी और इसके मूल जनवादी विचार को विकृत करके प्रस्तुत किया। इसे नष्ट करने के जबरदस्त प्रयास किये गए इसलिए के. दामोदरन ने कहा है कि "इन ग्रंथों के नष्ट होने से भारतीय दर्शन के इतिहास की निःसन्देह भारी क्षति हुई है। कारण यह है कि इस महान दार्शनिक प्रणाली के अध्ययन के लिए इस प्रणाली के कट्टर दुश्मनों द्वारा प्रस्तुत की गयी व्याख्याओं पर ही निर्भर रहना पड़ता है।"

इकाई 6 मिलिन्द और नागसेन

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 मिलिन्द और नागसेन

6.3 संवाद की लोकतांत्रिक परंपरा

6.4 मिलिन्द-प्रश्न : प्रामाणिकता और महत्व

6.5 सारांश

6.6 अभ्यास / प्रश्न

6.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप राजा मिलिन्द और भिक्खु नागसेन के संवादों से परिचित होंगे।

इसके साथ ही आप दोनों विद्वानों के मानवीय विचार, प्रश्न, जिज्ञासा, तर्क तथा इनके महत्व का अंकन कर सकेंगे। पालि साहित्य में राजा मिलिन्द को उनकी जिज्ञासा और तर्कपूर्ण प्रश्नों के कारण और भिक्खु नागसेन को विवेक संपन्न और प्रामाणिक उत्तर देने वाले महान बौद्ध विचारक के रूप में जाना जाता है। एक तरफ जहाँ मिलिन्द राजसत्ता के प्रति सजग और सचेत हैं वहीं दूसरी ओर वे ज्ञान-विज्ञान के प्रति समर्पित मनुष्य भी हैं। भिक्खु नागसेन भारतीय ज्ञान की विविध शाखाओं के ज्ञाता हैं। ऐसी जनश्रुति है कि भिक्खु नागसेन ने तत्व, जीवन और जगत के रहस्यों को जानने और समझने के लिए वेद, उपनिषद, आगम, निगम का अध्ययन किया। अन्ततः उनकी जिज्ञासा बुद्ध वचन से शांत हुई। राजा मिलिन्द और भिक्खु नागसेन के बारे में उपलब्ध जानकारी का स्रोत 'मिलिन्द प्रश्न' पुस्तक और मिलिन्द द्वारा जारी किये गये सिक्के हैं। विषय की विविधता 'मिलिन्द प्रश्न' की महत्वपूर्ण विशेषता है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप महत्वपूर्ण बिन्दुओं से भली-भाँति परिचित होंगे-

- संवाद की लोकतांत्रिक परंपरा से;
- मिलिन्द की जिज्ञासा में निहित प्रश्नाकुल मन से;
- प्रश्नांकित करने की तार्किक परंपरा से;
- नागसेन के व्यक्तित्व से;
- बुद्ध वचन के सहज जीवन दर्शन से; और
- शास्त्रार्थ की मौलिक उद्भावनाओं से।

6.1 प्रस्तावना

मिलिन्द और भिक्खु नागसेन के बारे में जानकारी का आधार स्रोत 'मिलिन्द प्रश्न' पुस्तक है। इस पुस्तक का महत्व महज इसलिए नहीं है कि इसमें बुद्ध वचनों की सहज व्याख्या हुई है इसके साथ-साथ इसमें मनुष्य और मनुष्यता के प्रति संवेदनशील चिंतन की विचार श्रृंखला भी मौजूद है। गौतम बुद्ध ने अपने उपदेश में ईश्वर, जीव, आत्मा, भाग्य, स्वर्ग-नरक आदि को अविद्या एवं अज्ञान कहकर जिस अनात्मवाद और अनीश्वरवाद की स्थापना की है उसकी व्यावहारिक व्याख्या 'मिलिन्द प्रश्न' में व्याप्त है। आगे हम इन विचार श्रृंखलाओं का गहन अध्ययन करेंगे। जन-जीवन से गहरा जुड़ाव और जीवन-संघर्ष की वैचारिकी 'मिलिन्द प्रश्न' की प्रमुख पहचान है। आवश्यकता इस बात की है कि 'मिलिन्द प्रश्न' के इन संवादी स्वरों से परिचित होते हुए साहित्य के साथ-साथ जीवन और जगत के स्थापित मानकों की भी समीक्षा की जाए। आइए इस इकाई का अध्ययन करते हैं।

6.2 मिलिन्द और नागसेन

राजा मिलिन्द का मूल नाम मिनाण्डर था। अब तक प्राप्त बाईस सिक्कों के एक तरफ़ पालि भाषा में 'महरजस तद्रतस मेनन्द्रस' अंकित है और दूसरी तरफ़ ग्रीक भाषा में 'बैसिलेओस सोटेरोस मिनाण्डर' अंकित है। ये सिक्के उत्तर भारत के सुदूर प्रांतों में पाए गए हैं। समस्त प्रामाणिक सामग्रियों के आधार पर सम्राट मिनाण्डर के राज्य की सीमा उत्तर में काश्मीर तक पूर्व में मथुरा तक और पश्चिम में काबुल तक विस्तृत थी। मिलिन्द ने लम्बे समय तक शासन किया, इसका प्रमाण सिक्कों पर उपस्थित उनके चित्रों से लगाया जा सकता है। कुछ सिक्कों पर उनके तरुण अवस्था के चित्र हैं और कुछ में अत्यंत वृद्धावस्था के चित्र हैं। एक सिक्का ऐसा है जिसमें उनका नाम थोड़ा परिवर्तित है। इस सिक्के में एक तरफ़ में ग्रीक भाषा में 'बैसिलेओस डिकाइओ मिनाण्डर' लिखा है तो दूसरी तरफ़ पालि भाषा में 'महरजस धर्मिकस मेनन्द्रस'। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि मिलिन्द ने नागसेन से शास्त्रार्थ के बाद बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण की। 'मिलिन्द प्रश्न' पुस्तक के प्रथम परिच्छेद में राजा मिलिन्द के बारे में जो सूचना उपलब्ध है, उसके अनुसार मिलिन्द जम्बूद्वीप के सागल (स्यालकोट) नामक नगर के राजा थे। वे परम ज्ञानी, चतुर, बुद्धिमान और योग्य शासक थे। उन्होंने अनेक विद्याओं को पढ़ा था, जैसे-श्रुति, स्मृति, सांख्य, याग, न्याय, वैशेषिक, गणित, संगीत, वैद्यक, चारों वेद, सभी पुराण, इतिहास, ज्योतिष, मंत्र-विद्या, तर्क, तंत्र, युद्ध-विद्या, छंद और सामुद्रिक। वह वाद करने में अद्वितीय और अजेय थे। उनके समान सारे जम्मूद्वीप में कोई दूसरा नहीं था। जनश्रुति है कि उन्होंने अपने समकालीन लब्ध प्रतिष्ठ विद्वानों जैसे पूरण कस्यप, मक्खली गोसाल, निगण्ठ नातपुत्र, संजय वेलटिठपुत्र, अजित केसकम्बली और ककुध कच्चान आदि को शास्त्रार्थ में परास्त किया था। वे उनके पास अपनी जिज्ञासा के समाधान के लिए प्रस्तुत हुए परन्तु ये समस्त विद्वान उन्हें संतुष्ट न कर सके। अंततः प्रश्नों के रूप में उनकी जिज्ञासा नागसेन से मिलने के बाद शांत हुई।

मिलिन्द और नागसेन का अस्तित्व एक दूसरे से जुड़ा हुआ है। अगर प्रामाणिक रूप से मिलिन्द हैं तो भिक्खु नागसेन भी समय सत्य हैं। नागसेन के बारे में जानकारी का मूल स्रोत 'मिलिन्द प्रश्न' पुस्तक है। पुस्तक के अनुसार नागसेन का जन्म कजंगल गांव में सोनुत्तर नामक ब्राह्मण के घर में हुआ था। जन्म से सात वर्ष बीतने पर नागसेन ने ब्राह्मण कुल की शिक्षाओं को सीखा परन्तु इस शिक्षा से उन्हें जीवन और जगत का सार नहीं प्राप्त हुआ। सात वर्ष के असन्तुष्ट नागसेन आयुमान रोहण के शिष्यत्व में बौद्ध धर्म में

दीक्षित हुए। महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं ने असंतुष्ट नागसेन को संतुष्ट किया और संतुष्ट नागसेन ने असंतुष्ट मिलिन्द की जिज्ञासाओं को शांत कर उन्हें संतुष्ट किया। महत्वपूर्ण बात यह है कि मिलिन्द और नागसेन दोनों ही भारतीय इतिहास और दर्शन के ऐसे चरित्र हैं जिन्होंने परंपरा से प्राप्त ज्ञान को ज्यो का त्यों स्वीकार नहीं किया। दोनों ने ही ज्ञान को नये सिरे से खोजा। ज्ञान को पाने, प्रश्नांकित करने और प्रामाणिक तथ्यों के आधार पर ज्ञान को आगे बढ़ाने की परंपरा के सुखद एहसास के रूप में मिलिन्द और नागसेन का व्यक्तित्व महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय है।

6.3 संवाद की लोकतांत्रिक परंपरा

संवादहीनता ज्ञान के विस्तार में सबसे बड़ी बाधा है। इस तथ्य के साथ मिलिन्द और नागसेन के बीच हुआ संवाद लोकतांत्रिक महत्व रखता है। लोकतंत्र हर प्रकार के वर्चस्व के खिलाफ मनुष्य के अधिकार की मनुष्य द्वारा निर्मित मौलिक सर्जना है। लोकतंत्र का लक्ष्य अधिकार सम्पन्न मनुष्य का निर्माण है। इस रूप में दोनों के बीच हुए संवाद का मूल्य भी लोकतांत्रिक है। दोनों के बीच संवाद की कसौटी क्या है? इसे 'मिलिन्द प्रश्न' पुस्तक के 'पण्डितवाद और राजवाद' प्रकरण से समझा जा सकता है।

राजा मिलिन्द ने नागसेन से पूछा -'क्या आप मेरे साथ शास्त्रार्थ करेंगे?'

भिक्खु नागसेन ने उत्तर दिया- अवश्य महाराज! परन्तु हमारे बीच शास्त्रार्थ पण्डितों की तरह होना चाहिए ना कि राजाओं की तरह।

नागसेन ने स्पष्ट किया कि पण्डित और राजा कैसे शास्त्रार्थ करते हैं। वे कहते हैं कि "पण्डित शास्त्रार्थ में एक-दूसरे को तर्कों में लपेट लेते हैं, एक-दूसरे की लपेटन को खोल देते हैं। एक-दूसरे को तर्कों से पकड़ लेते हैं, एक-दूसरे की पकड़ से छूट जाते हैं। वक्ता-श्रोता के रूप में वे एक-दूसरे के सामने तर्क रखते हैं और तर्कों का खण्डन करते हैं। किन्तु कोई किसी पर गुस्सा नहीं करता। जबकि राजाओं के शास्त्रार्थ में यदि कोई राजा का तर्कपूर्ण खण्डन करता है तो वह दण्ड का भागी होता है।"

इस प्रकरण से यह स्पष्ट होता है कि नागसेन ज्ञान की तर्क सम्मत परंपरा के चिंतक हैं। वे ज्ञान को कहने और सुनने की आस्था के रूप में स्वीकार नहीं करते साथ ही यह भी महत्वपूर्ण है कि वे ज्ञानी और अज्ञानी के बीच भी संवाद की स्वतंत्रता में विश्वास रखते हैं। तर्क और प्रमाणिक ज्ञान से उपजे आत्मविश्वास से युक्त नागसेन राजा मिलिन्द के शासक होने से न तो घबराते हैं और ना हि राजा मिलिन्द के आभा मण्डल से प्रभावित होते हैं। राजा मिलिन्द भी अपने राजा होने के दम्भ के साथ भिक्खु नागसेन के पास शास्त्रार्थ करने नहीं जाते। वे नागसेन से कहते हैं कि मैं राजाओं की तरह नहीं पण्डितों की तरह शास्त्रार्थ करूँगा। दोनों के बीच हुए शास्त्रार्थ में न तो दम्भ है और ना हि व्यक्तित्व की चमक दमक। दोनों सत्यान्वेषी एक दूसरे के तर्कों का सम्मान करते हुए संवाद की लोकतांत्रिक परंपरा का निर्वाह करते हैं।

मिलिन्द का प्रश्नाकुल मन उन्हें जिज्ञासु बनाता है। उनकी जिज्ञासा उनके शाही रुतबे से प्रभावित नहीं होती। इस अध्याय में हम राजा मिलिन्द की जिज्ञासा और नागसेन के तर्कपूर्ण शास्त्रार्थ का अध्ययन करेंगे। इन विषयों की दार्शनिक व्याख्या करना ध्येय नहीं है। आडम्बर रहित सहज जीवन शैली के प्रति दोनों विद्वानों का तर्कपूर्ण चिंतन और निष्कर्ष का क्या मूल्य है? इस रूप में दोनों विद्वानों के बीच हुए संवाद में निहित सहज उपदेश का मूल्यांकन किया जाएगा।

मिलिन्द–प्रश्न में अनात्म

मिलिन्द–प्रश्न के अन्तर्गत अनात्म की व्याख्या बड़े ही रोचक मनोवैज्ञानिक एवं तार्किक ढंग से की है। इस प्रसंग में आयुष्मान नागसेन और राजा मिलिन्द के बीच में हुई शास्त्रार्थ के अन्तर्गत अनात्म की व्याख्या की प्रस्तुति अतीशय सरलतम एवं दार्शनिक पद्धति से की गई है। राजा मिलिन्द अपने कुछ सैनिकों के साथ नागसेन के पास गए और उन्हें नमस्कार तथा अभिनंदन करने के बाद एक ओर बैठ गए। नागसेन ने भी उत्तर में राजा का अभिनंदन किया। उससे राजा के चित्त को सांत्वना मिली।

तब राजा मिलिन्द ने पूछा– "भन्ते! आप किस नाम से जाने जाते हैं, आपका शुभ नाम?"

"महाराज! 'नागसेन' के नाम से मैं जाना जाता हूँ, और मेरे सब्रह्मचारी मुझे इसी नाम से पुकारते हैं। महाराज! यद्यपि माँ बाप नागसेन, सूरसेन, वीरसेन, या सिंहसेन ऐसा कुछ नाम दे देते हैं, किन्तु ये सभी केवल व्यवहार करने के लिये संज्ञाएं भर हैं, क्योंकि यथार्थ में ऐसा कोई एक पुरुष (आत्मा) नहीं है।"

"भन्ते नागसेन! यदि कोई एक पुरुष नहीं है, तो कौन आपको चीवर भिक्षा, शयनासन और ग्लानप्रत्यय देता है? कौन उसका भोग करता है? कौन शील की रक्षा करता है? कौन ध्यान–भावना का अभ्यास करता है? कौन आर्य मार्ग के फल निर्वाण का साक्षात्कार करता है? न पाप है और न ही पुण्य, कर्मों का कोई करने वाला है, और न कोई कराने वाला, न पाप और पुण्य कर्मों के कोई फ़ल होते हैं। भन्ते नागसेन! यदि आपको कोई मार डाले तो किसी का मारना नहीं हुआ। भन्ते नागसेन! तब, आपके कोई आचार्य भी नहीं हुए, कोई उपाध्याय भी नहीं हुए, आपकी उपसम्पदा नहीं हुई?"

"आप कहते हैं कि आपके 'सब्रह्मचारी' आपको 'नागसेन' नाम से पुकारते हैं, तो यह 'नागसेन' क्या है? भन्ते! क्या ये केश नागसेन हैं?"

"नहीं महाराज!"

"ये रोयें नागसेन हैं?"

"नहीं महाराज!"

"ये नंख, दाँत, चमड़ा, मांस, स्नायु, हड्डी, मज्जा, वक्क, हृदय, यकृत क्लोमक, प्लीहा (=तिल्ली), फुसफुस, आँत, पतली आँत, पेट, पखाना, पित्त, कफ, पीब, लोहू, पसीना, मेद, आँसू, चर्बी, लार, नेटा, लसिका, दिमाग, नागसेन है?"

"नहीं महाराज! भन्ते! तब क्या आपका रूप नागसेन है?"

"नहीं महाराज!"

"क्या आपकी वेदनायें नागसेन हैं?"

"नहीं महाराज!"

"आपकी संज्ञा नागसेन है?"

"नहीं महाराज!"

"आपके संस्कार नागसेन है?"

"नहीं महाराज!"

"आपका विज्ञान नागसेन हैं?"

"नहीं महाराज!"

"भन्ते! तो क्या रूप, वेदना, संस्कार और विज्ञान सभी एक साथ नागसेन है?"

"नहीं महाराज!"

"नहीं महाराज!"

"भन्ते! तो क्या इन रूपादि से भिन्न कोई नागसेन हैं?"

"नहीं महाराज!"

"भन्ते! मैं आपसे पूछते–पूछते थक गया, किन्तु 'नागसेन' क्या है? इसका पता नहीं लगा। तो क्या 'नागसेन' केवल शब्द मात्र है? आखिर नागसेन है कौन? भन्ते! आप झूठ बोलते हैं कि नागसेन कोई नहीं है"

तब आयुश्मान् नागसेन ने राजा मिलिन्द से कहा– "महाराज! आप क्षत्रिय बहुत ही सुकुमार हैं। इस दुपहरिये की तपी और गर्म बालू तथा कंकड़ों से भरी भूमि पर पैदल चल कर आने से आपके पैर दुःख रहे होंगे, शरीर थक गया होगा, मन अच्छा नहीं लगता होगा और बड़ी शारीरिक पीड़ा हो रही होगी। क्या आप पैदल चल कर यहाँ आए या किसी सवारी पर?"

"भन्ते! मैं पैदल नहीं, किन्तु रथ पर आया।"

"महाराज! यदि आप रथ पर आये, तो मुझे बतावें कि आपका रथ कहाँ हैं? महाराज! क्या ईशा (=दंड) रथ हैं?"

"नहीं भन्ते!"

"क्या अक्ष रथ हैं?"

"नहीं भन्ते!"

"क्या चक्के रथ हैं?"

"नही भन्ते!"

"रथ पञ्जर रथ है?"

"नहीं भन्ते!"

"क्या रथ की रस्सियाँ रथ हैं?"

"नहीं भन्ते!"

"क्या लगाम रथ हैं?"

"नहीं भन्ते!"

"क्या चाबुक रथ हैं?"

"नहीं भन्ते!"

"महाराज! क्या ईशा इत्यादि के परे कहीं रथ हैं"

"नहीं भन्ते!"

"महाराज! आपसे पूछते–पूछते मैं थक गया, किन्तु यह पता नहीं लगा कि रथ कहाँ? क्या रथ केवल एक शब्द मात्र हैं? आखिर यह रथ है क्या? महाराज! आप झूठ बोलते हैं कि रथ नहीं है! महाराज! सारे जम्बूद्वीप के आप सब से बड़े राजा हैं, भला किस से डर कर आप झूठ बोलते हैं!"

"पाँच सौ यवन, और मेरे अस्सी हजार भिक्षुओं! आप लोग सुनें! राजा मिलिन्द ने कहा–मैं रथ पर यहाँ आया, किंतु मेरे पूछने पर कि रथ कहाँ है, वे मुझे नहीं बता पाते। क्या उनकी बातें मानी जा सकती हैं?"

इन पर उन पाँच सौ यवनों ने आयुष्मान नागसेन को साधुकार देकर राजा मिलिन्द से कहा– "महाराज! यदि आप कह सकें, तो उत्तर दें।"

तब, राजा मिलिन्द ने आयुश्मान नागसेन से कहा– "भन्ते नागसेन! मैं झूठ नहीं बोलता। ईशा इत्यादि रथ के अवयवों के आधार पर केवल व्यवहार के लिए "रथ" ऐसा एक नाम कहा जाता है।"

"महाराज!" बहुत ठीक, आपने जान लिया कि रथ क्या है? इसी तरह मेरे केश इत्यादि के आधार पर केवल व्यवहार के लिये 'नागसेन' ऐसा एक नाम कहा जाता है। किन्तु, परमार्थ में 'नागसेन' ऐसा कोई एक पुरुष विद्यमान नहीं है।" भिक्षुणी वज्रा ने भगवान् के सामने कहा था:–

"जैसे अवयवों के आधार पर 'रथ' संज्ञा होती है, उसी तरह स्कन्धों के होने से एक 'सत्व (=जीव)' समझा जाता है।"

"भन्ते नागसेन! आश्चर्य है! इस जटिल प्रश्न को आपने बड़ी खूबी के साथ सुलझा दिया।

पदार्थों के अस्तित्व का सिलसिला

राजा बोला– "भन्ते! जो उत्पन्न होता है, वह वही व्यक्ति है या दूसरा?"

स्थविर बोले– "न वही और न दूसरा ही।"

कृपया उपमा देकर समझावें।

"महाराज! जब आप बहुत बच्चे थे, खाट पर चित्त ही लेट सकते थे, सो क्या आप अब भी इतने बड़े होकर वही हैं?"

"नहीं भन्ते! अब मैं दूसरा हो गया।"

"महाराज! यदि आप वही बच्चे नहीं हैं, तो अब आपकी कोई माँ भी नहीं है, कोई पिता भी नहीं है, कोई शिक्षक भी नहीं है, और कोई शीलवान या ज्ञानी भी नहीं हो सकता। महाराज! तब तो गर्भ की भिन्न–भिन्न अवस्थाओं की भी भिन्न–भिन्न माताएं हो जायेंगी, बड़े हो जाने पर माता भी भिन्न हो जायेगी। जो शिल्पों को सीखता है, वह दूसरा और जो सीख कर तैयार हो जाता है, वह दूसरा होगा। दोष करने वाला दूसरा होगा और किसी दूसरे का हाथ पैर काटा जायगा।"

"नहीं भन्ते! किन्तु आप इससे क्या दिखाना चाहते हैं?"

स्थविर बोले– "महाराज! मैं बचपन में दूसरा था और इस समय बड़ा होकर दूसरा हो गया हूँ, किन्तु वे सभी भिन्न–भिन्न अवस्थाएं इस शरीर पर ही घटने से एक ही में ले ली जाती हैं।"

कृपया उपमा देकर समझावें।

"महाराज! यदि आदमी कोई दीया जलावे, तो क्या वह रात भर जलता रहेगा?"

"हाँ भन्ते! रात भर जलता रहेगा।"

"महाराज! रात के पहले पहर में जो दीये की टेम (लौ) थी, क्या वहीं दूसरे या तीसरे पहर में भी बनी रहती है?"

"नहीं भन्ते!"

"महाराज! तो क्या वह दीया पहले पहर में दूसरा, दूसरे और तीसरे पहर में दूसरा हो जाता है?"

"नहीं भन्ते! वही दिया सारी रात जलता रहता है।"

"महाराज! ठीक इसी तरह किसी वस्तु के अस्तित्व के सिलसिले में एक अवस्था उत्पन्न होती है, एक लय होती है–और इस तरह प्रवाह जारी रहता है। एक प्रवाह की दो अवस्थाओं में एक क्षण का भी अन्तर नहीं होता, क्योंकि एक के लय होते ही दूसरी उत्पन्न हो जाती हैं। इसी कारण न वहीं जीव रहता है और न दूसरा ही हो जाता है।"

एक जन्म के अन्तिम विज्ञान के लय होते ही दूसरे जन्म का प्रथम विज्ञान उठ खड़ा होता है।

कृपया एक और उपमा देकर समझावें।

"महाराज! दूध दुहे जाने पर कुछ समय के बाद जम कर दही हो जाता है, दही से मक्खन और मक्खन से घी भी बना लिया जाता है। तब कोई कहे–जो दूध था, वही दही था। महाराज! ऐसा कहने वाला क्या ठीक कहता है?"

"नहीं भन्ते! दूध से ये चीजें बन गई।"

"महाराज! दूध दुहे जाने पर कुछ समय के बाद जम कर दही हो जाता है, दही से मक्खन और मक्खन से घी भी बना लिया जाता है। तब कोई कहे–जो दूध था, वही दही था। महाराज! ऐसा कहने वाला क्या ठीक कहता है?"

"नहीं भन्ते! दूध से ये चीजें बन गई।"

"महाराज! ठीक इसी भांति किसी वस्तु के अस्तित्व के प्रवाह में एक अवस्था उत्पन्न होती है, एक लय होती है–और इस तरह प्रवाह जारी रहता है। एक प्रवाह की दो अवस्थाओं में एक क्षण का भी अन्तर नहीं होता, क्योंकि एक के लय होते ही दूसरा उत्पन्न हो जाता है। इसी कारण, न वही जीव रहता है और न दूसरा ही हो जाता है।"

"एक जन्म के अन्तिम विज्ञान के लय होते ही दूसरे जन्म का प्रथम विज्ञान उठ खड़ा होता है।"

"भन्ते! आपने ठीक कहा।"

पुनर्जन्म से मुक्त होने का ज्ञान

राजा बोला– "भन्ते! जो इसके बाद जन्म नहीं ग्रहण करेगा, वह क्या इस बात को जानता है कि मैं फिर जन्म नहीं ग्रहण करूंगा?"

"हाँ महाराज! वह इस बात को जानता है कि मैं फिर जन्म नहीं ग्रहण करूंगा।"

"भन्ते! वह कैसे इस बात को जानता है?"

"महाराज! फिर भी जन्म ग्रहण करने के जो हेतु और प्रत्यय हैं, उनके शान्त तथा नष्ट हो जाने से वह इस बात को जानता है, कि मैं फिर जन्म नहीं ग्रहण करूंगा।"

कृपया उपमा देकर समझावें।

"महाराज! कोई किसान जोत बोकर, अपने भण्डार को भर ले और उसके बाद कुछ समय तक न जोते, न बोये, जमा किए हुए अन्न को बैठ कर खाय, या बाँट में लगावे, अपने दूसरे कामों में खर्च करे। महाराज! तो क्या वह किसान नहीं जानेगा कि मेरा भण्डार अब भी नहीं रहा है (किन्तु खाली हो रहा है)।"

"कैसे जानेगा?"

"भण्डार के भरने के, जो हेतु और प्रत्यय हैं, उनके बन्द हो जाने से।"

"महाराज! इसी तरह, फिर भी जन्म ग्रहण करने के, जो हेतु और प्रत्यय हैं, उनके शांत तथा नष्ट हो जाने से वह इस बात को जानता है कि मैं फिर जन्म नहीं ग्रहण करूंगा।"

"भन्ते! आप ठीक कहते हैं।"

पुनर्जन्म की व्याख्या एवं विश्लेषण

राजा बोला– "भन्ते! आप फिर भी जन्म ग्रहण करेंगे या नहीं?"

"महाराज! बस करें, इसके पूछने क्या मतलब? मैंने तो पहले ही कह दिया है कि यदि सांसारिक आसक्ति के साथ मरूंगा, तो जन्म ग्रहण करूँगा, नही तो नहीं।"

कृपया उपमा देकर समझावें।

"महाराज! कोई आदमी राजा की सेवा करे। राजा उससे खुश हो, उसे कोई बड़ा पद दे दे। उस पद को पाश्वह सभी देश और आराम के साथ चैन से रहे। यदि वह आदमी लोगों से कहता फिरे–राजा ने मेरी कुछ भी भलाई नहीं की है, तो क्या वह ठीक कहता है?"

"महाराज! मेरे कहने का तात्पर्य यही है।

"भन्ते! बहुत अच्छा।"

आत्मा के अस्तीत्व का विरोध

"राजा बोला–"भन्ते! जानने वाला (=ज्ञाता) कोई (आत्मा) है या नहीं?"

"महाराज! यह जानने वाला कौन है?"

"भन्ते! जो जीव हम लोगों के भीतर रह आँख से रूपों को देखता है, कान से शब्दों को सुनता है, नाक से गन्धों को लेता है, जीभ से स्वाद लेता है, शरीर से स्पर्श का अनुभव करता है, और मन से धर्मों को जानता है। जिस तरह हम लोग इस कोठे पर बैठकर जिस–जिस खिड़की से–पूरब वाली से, या पश्चिम वाली से, या दक्खिन वाली से, या उत्तर वाली से देखना चाहें देख सकते हैं।"

"स्थविर बोले– "महाराज! पाँच दरवाजे कौन से हैं, सो मैं कहूँगा, आप उसे मन लगाकर सुनें।"

"हम लोग कोठे पर बैठकर पूरब, पच्छिम, उत्तर, दक्खिन किसी भी खिड़की से बाहर के रूपों को देख सकते हैं, उसी तरह हम लोगों के भीतर रहने वाले जीव में आंख, कान इत्यादि सभी इन्द्रियों से रूपों को देखने, शब्दों को सुनने, गन्धों को सूँघने, रसों का स्वाद लेने, स्पर्श करने या धर्मों को जानने का सामर्थ्य होना चाहिए।"

"भन्ते! ऐसी बात तो नहीं है।"

"महाराज! आप के कथन आपस में मेल नहीं खाते।"

"महाराज! इन खिड़कियों को खोल देने से हम लोग यहीं बैठे बैठे खुले आकाश की ओर बाहर के सभी रूपों को साफ–साफ देख सकते हैं। इसी तरह, क्या हम लोगों के भीतर रहने वाला जीव आँखों के खुल जाने से खुले आकाश की ओर हो सभी रूपों को साफ–साफ देख सकता है, कान, नाक, जीभ और काया के खुल जाने पर शब्दों को साफ–साफ सुन सकता है, गन्धों को सूंघ सकता है, रसों को चख सकता है और चीजों को स्पर्श कर सकता है?"

"नहीं, भन्ते!"

"महाराज!" आपके कथन का ना ओर है न छोर है।"

"महाराज! यदि दिन्न (नामक पुरुष) यहाँ से बाहर जाकर दरवाजे पर खड़ा हो जाय, तो क्या आप इस बात को नहीं जानेंगे?"

"हाँ, भन्ते! जानूंगा।"

"महाराज! इसी तरह, हम लोगों के भीतर में रहने वाला जीव जीभ से बाहर के रस को जानेगा–यह खट्टा है, नमकीन है, तीखा है, कड़ुआ है, कसैला है या मीठा है?"

"हाँ, भन्ते! जानेगा।"

"उन रसों के भीतर चले जाने पर भीतर ही रहने वाला जीव उनका अनुभव करेगा या नहीं–यह खट्टा है, नमकीन है, तीखा है, कड़ुआ है, कसैला है या मीठा है?"

"नहीं भन्ते! नहीं अनुभव करेगा।"

"महाराज! आप समझते हुए भी न समझने का भाव दर्शाते हैं।"

"महाराज! कोई आदमी सौ घड़े मधु मंगवा एक नाद भरवा दे। फिर, एक दूसरे आदमी का मुंह अच्छी तरह बंधवा उसमें डलवा दे, तो आप बतावें, क्या वह जान सकेगा कि जिसमें वह डाल दिया गया है, सो मीठा है या नहीं?"

"भन्ते! नहीं जान सकेगा।"

"सो क्यों?"

"क्योंकि मधु उसके मुंह में जायगा ही नहीं।"

"महाराज! तब तो आपका पहला कथन का बाद के कथन से मेल नहीं खाता।"

"भन्ते, आप जैसे पण्डित के साथ मैं बहस कर सकता हूं। कृपा कर बतावें कि बात क्या है?"

तब, स्थविर ने राजा मिलिन्द को अभिधर्म के अनुसार सब कुछ समझा दिया।

"महाराज! चक्षु और रूपों के होने से चक्षु–विज्ञान उत्पन्न होता है। उसके उत्पन्न होने के साथ ही स्पर्श वेदना, संज्ञा, चेतना और एकाग्रता एक पर एक उत्पन्न होते हैं। इसी तरह दूसरी इन्द्रियों के साथ भी समझ लेना चाहिए। ये धर्म एक दूसरे के होने से उत्पन्न होते हैं। कोई जानने वाला (=ज्ञाता आत्मा) नहीं है।"

"भन्ते! आपने ठीक समझाया।"

जहां–जहां चक्षु विज्ञान होता है, वहां–वहां मनोविज्ञान

"राजा बोला–"भन्ते! जहां–जहां चक्षु विज्ञान उत्पन्न होता है, वहां क्या मनोविज्ञान भी उत्पन्न होता है?"

"हां, महाराज! वहां मनोविज्ञान भी उत्पन्न होता।"

"भन्ते! पहले कौन उत्पन्न होता है, चक्षुविज्ञान या मनोविज्ञान?"

"महाराज! पहले चक्षुविज्ञान और बाद में मनोविज्ञान?"

"भन्ते! क्या चक्षुविज्ञान मनोविज्ञान को आज्ञा देता है कि, "जहां–जहां मैं उत्पन्न होऊँ, वहां–वहां तुम भी होवो" अथवा मनोविज्ञान चक्षुविज्ञान को आज्ञा देता है, "जहां–जहां तुम उत्पन्न होगे वहां–वहां मैं भी हूंगा?"

"नहीं महाराज! उन लोगों का आपस में कोई ऐसी आज्ञा का देना नहीं होता।"

"भन्ते! तो क्या बात है कि जहां–जहां चक्षुविज्ञान उत्पन्न होता है, वहां–वहां मनोविज्ञान भी होता है?"

"महाराज! उन लोगों में ऐसा (1) ढालपन होने से, (2) दरवाजा होने से, (3) आदत होने से, और (4) साथीपन होने से होता है।"

"भन्ते! (1) ढालपन होने से कैसे जहां–जहां चक्षुविज्ञान होता है, वहां–वहां मनोविज्ञान भी होता है? कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! अच्छा, बतायें कि पानी पड़ने से पानी किस ओर ढरक कर बहता है?"

"भन्ते! जिधर की जमीन ढालू है, उधर ही पानी ढरक कर बहता है।"

"महाराज! फिर किसी दूसरे दिन पानी बरसने से पानी किस ओर बहेगा?"

"भन्ते! उसी ओर।"

"भन्ते! क्या पहला पानी दूसरे पानी को आज्ञा देता है, "जिस ओर ढरक कर मैं बहूं उसी ओर तुम भी बहो"? या दूसरा पानी पहले पानी को आज्ञा देता है "जिस ओर तुम बहोगे, उसी ओर मैं भी बहूंगा?"

"नहीं भन्ते! उन लोगों में ऐसी कोई बातें नहीं होती। जमीन के ढालू होने से ही दोनों पानी उसी ओर बहता है।"

"महाराज! इसी तरह, ढालूपन होने से जहां–जहां चक्षुविज्ञान उत्पन्न होता है वहां–वहां मनोविज्ञान भी होता है। परस्पर कोई आज्ञा का देना नहीं होता।"

"भन्ते! दरवाजा होने से कैसे जहां–जहां चक्षुविज्ञान होता है, वहां–वहां मनोविज्ञान भी होता है? कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! किसी राज्य का सीमान्त प्रान्त में एक नगर हो, जो दृढ़ प्रकार से घिरा हो तथा जिसका फाटक भी बड़ा दृढ़ हो। उस नगर में एक ही दरवाजा हो। अब, कोई आदमी उस नगर से बाहर निकलना चाहे तो किस ओर से निकलेगा?"

"भन्ते! उसी दरवाजे (निकास) से निकलेगा।"

"फिर, कोई दूसरा आदमी बाहर निकलना चाहे, तो किस ओर से निकलेगा?"

"भन्ते! उसी दरवाजे से।"

"महाराज! क्या यहां पहला आदमी दूसरे को आज्ञा देता है कि मैं जिस ओर से निकलूं उधर ही से तुम भी निकलो, या दूसरा आदमी पहले को आज्ञा देता है कि तुम जिधर से निकलोगे उधर ही से मैं भी निकलूंगा?"

"नहीं भन्ते! उन लोगों के बीच कोई बातें नहीं होती हैं। एक दरवाजा होने से ही जिधर से एक निकलता है, उधर से दूसरा भी निकलता है।"

"महाराज! इसी तरह, दरवाजा होने से जहां–जहां चक्षु विज्ञान उत्पन्न होता है, वहां–वहां मनोविज्ञान भी होता है। उनकी आपस में कोई बात नहीं हुई होती।"

"भन्ते! आदत होने से कैसे जहां–जहां चक्षुविज्ञान होता है वहां–वहां मनोविज्ञान भी होता है। कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! आगे एक बैलगाड़ी गई हो, तो दूसरी गाड़ी किस ओर ज़ायेगी?"

"भन्ते! जिस ओर पहली गाड़ी गई होगी, उसी ओर दूसरी भी जायंगी।"

"महाराज! क्या पहली गाड़ी दूसरी गाड़ी को आज्ञा देती है, या दूसरी गाड़ी पहली को आज्ञा देती है?"

"नहीं भन्ते! उनमें कोई ऐसी बात नहीं हुई होती। (बैलों में) ऐसी आदत पड़ जाने से ही वह एक दूसरे के पीछे–पीछे जाते हैं।"

"महाराज! इसी तरह, आदत से ही जहां–जहां चक्षुविज्ञान होता है, वहां–वहां मनोविज्ञान भी होता है? कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! मुद्रा, गणना, संख्या और लेखा इत्यादि शिल्पों में नवसिखिया बार–बार भूलें करता है। सावधानी से बार–बार व्यवहार करने पर उसकी भूलें जाती रहती हैं। इसी तरह, व्यवहार से जहां–जहां चक्षुविज्ञान उत्पन्न होता है, वहां–वहां मनोविज्ञान भी होता है।"

"इसी भांति दूसरी भी इन्द्रियों के विज्ञानों के साथ मनोविज्ञान उत्पन्न होता है।"

"भन्ते! आपने ठीक समझाया।"

मनोविज्ञान के होने से वेदना भी होती है

राजा बोला– "भन्ते! जहां मनोविज्ञान उत्पन्न होता है, वहां क्या वेदना भी होती है?"

"हां महाराज! जहां मनोविज्ञान होता है, वहां स्पर्श भी होता है, वेदना भी होती है, संज्ञा भी होती है, चेतना भी होती है, वितर्क भी होता है, विचार भी होता है। स्पर्श से होने वाले सभी धर्म होते हैं।"

स्पर्श की पहचान

"भन्ते! स्पर्श की पहचान क्या है?"

"महाराज! 'छूना' स्पर्श की पहचान है।"

कृपया उपमा देकर समझावें।

"महाराज! दो भेड़ टक्कर खायें। उनमें एक भेंड़ को तो चक्षु समझना चाहिए और दूसरे को रूप। जो उन दोनों का टकराना है, उसे स्पर्श समझना चाहिए।"

कृपया फिर भी उपमा देकर समझावें।

"महाराज! कोई ताली बजावे। उनमें एक हाथ को तो चक्षु और दूसरे को रूप समझना चाहिए। जो दोनों हाथों का मिलना है, उसे स्पर्श समझना चाहिए।"

कृपया फिर भी उपमा देकर समझावें।

"महाराज! कोई झांझ बजावे। उसमें एक झांझ को तो चक्षु और दूसरे को रूप समझना चाहिए। जो इन दोनों का आकार मिलना है, उसे स्पर्श समझना चाहिए।"

"भन्ते। आपने ठीक कहा।"

वेदना की पहचान

"भन्ते नागसेन! 'वेदना' की क्या पहचान है?"

"महाराज! 'अनुभव करना' वेदना की पहचान है।"

कृपया उपमा देकर समझावें।

"महाराज! कोई आदमी राजा की सेवा करने। राजा उससे खुश हो, उसे कोई बड़ा पद दे दे। वह उस पद को पा सभी ऐश–आराम करते हुए बड़े चैन से रहे। अब, उसके मनमें ऐसा हो–मैंने पहले राजा की सेवा की, जिससे खुश हो राजा ने मुझे यह पद दे दिया है, उसी समय से लेकर मैं इस ऐश और आराम का अनुभव कर रहा हूं।"

"महाराज! इसी तरह 'अनुभव करना' वेदना की पहचान है।"

"भन्ते! आपने ठीक कहा।"

संज्ञा की पहचान

"भन्ते! संज्ञा की क्या पहचान है?"

"महाराज! 'पहचानना' संज्ञा की पहचान है।"

"क्या पहचानना?"

"नीले रंग को भी, पीले को भी, लाल को भी, उजले को भी, और मंजीठ रंग को भी पहचानना। महाराज! इस तरह 'पहचानना' संज्ञा की पहचान है।"

कृपया उपमा देकर समझावें।

"महाराज! राजा का भण्डारी भण्डार में जाकर नीली, पीली, लाल, उजली, मंजीठ सभी रंग की चीजों को देखकर उन्हें पहचानता है और जानता है। महाराज! इसी तरह,

'पहचानना' संज्ञा की पहचान है।"

"भन्ते! आपने बहुत ठीक कहा।"

विचार की पहचान

"भन्ते नागसेन! विचार का क्या लक्षण है?"

"महाराज! अनुमार्जन विचार का लक्षण है।"

कृपया उपमा देकर समझावें।

"महाराज! कांसे की थाली को पीटने से उससे आवाज निकलती है। यहां जिस तरह पीटना है, उसे वितर्क और जो आवाज का निकलना है, उसे विचार समझना चाहिए।"

विज्ञान, प्रज्ञा और जीव (आत्मा)

(क) राजा बोला–"भन्ते! विज्ञान, प्रज्ञा और जीव क्या ये तीन शब्द अक्षर और अर्थ दोनों में पृथक्–पृथक् हैं, या एक ही अर्थ के भिन्न–भिन्न नाम है?"

"महाराज! जान लेना विज्ञान की पहचान है, ठीक से समझ लेना प्रज्ञा की पहचान है, और जीव ऐसी कोई चीज ही नहीं है।"

"भन्ते! यदि जीव कोई चीज ही नहीं है, तो हम लोगों में वह क्या है, जो आंख से रूपों को देखता है, कान से शब्दों को सुनता है, नाक से गंधों को सूंघता है, जीभ से स्वादों को चखता है, शरीर से स्पर्श करता है, और मन से धर्मों को जानता है?"

"महाराज! यदि शरीर से भिन्न कोई जीव (आत्मा) है, जो हम लोगों के भीतर रह आंख से रूपों को देखता है, तो आंख निकाल लेने पर बड़े छेद से उसे और भी अच्छी तरह देखना चाहिये? कान काट देने पर उसे और भी अच्छी तरह सूंनना चाहिए। जीभ काट देने पर उसे और भी अच्छी तरह स्वाद लेना चाहिए और शरीर को काट देने पर उसे और भी अच्छे तरह स्पर्श करना चाहिए?"

"नहीं भन्ते! ऐसी बात नहीं है।"

"महाराज! तो हम लोगों के भीतर कोई जीव भी नहीं है।"

"भन्ते! बहुत अच्छा।"

पुनर्जन्म के विषय में

राजा बोला– "भन्ते! ऐसा कोई जीव है, जो इस शरीर से निकल कर दूसरे में प्रवेश करता है?"

"नहीं महाराज!"

"भन्ते! यदि इस शरीर से निकल कर दूसरे शरीर से जाने वाला कोई नहीं है, तब तो वह अपने पाप–कर्मों से मुक्त हो गया।"

"हां महाराज! यदि उसका फिर भी जन्म नहीं हो, तो अलबत्ता वह अपने पाप–कर्मों से मुक्त हो गया और यदि फिर भी वह जन्म ग्रहण करे, तो मुक्त नहीं हुआ।"

कृपया उपमा देकर समझावें।

"महाराज! यदि कोई आदमी किसी दूसरे का आम चुरा ले, तो दण्ड का भागी होगा या नहीं?"

"हां भन्ते! होगा।"

"महाराज! उस आम को तो उसने रोपा नहीं था, जिसे उसने लिया, फिर दण्ड का भागी कैसे होगा?"

"भन्ते! उसके रोपे हुए आम से ही यह भी पैदा हुआ, इसलिए वह दण्ड का भागी होगा।"

"महाराज! इसी तरह, एक पुरुष इस नाम–रूप से अच्छे और बुरे कर्मों को करता है। उन कर्मों के प्रभाव से दूसरा नाम–रूप जन्म लेता है, इसलिए वह अपने पाप कर्मों से मुक्त नहीं हुआ।"

"भन्ते! आपने ठीक समझाया।"

जगत में क्या है और क्या नहीं है?

"भन्ते नागसेन! संसार में बुद्ध देखे जाते हैं, बुद्ध के श्रावक देखे जाते हैं, चक्रवर्ती राजा देखे जाते हैं, छोटे–बड़े राजा देखे जाते हैं, देवता और मनुष्य देखे जाते हैं, धनी लोग देखे जाते हैं, निर्धन लोग देखे जाते हैं, अच्छी तरक्की करते हुए लोग देखे जाते हैं, बुरी अवस्था में गिरते लोग देखे जाते हैं, पुरुष को स्त्री–लिंग उत्पन्न होते देखा जाता है, स्त्री को पुरुष–लिंग उत्पन्न होते देखा जाता है, अच्छे काम को बिगड़ जाते देखा जाता है, पाप और पुण्य के फल भोगते हुये लोग देखे जाते हैं।"

"संसार में कितने जीव अण्डज हैं, कितने जरायुज, कितने संस्वेदज और कितने औपपातिक। कितने जीव जीव बिना पैर वाले हैं, कितने दो पैर वाले, कितने चार पैर वाले, और कितने अनेक पैर वाले। संसार में यक्ष भी हैं, राक्षस भी हैं, कूस्माण्ड भी हैं, असुर भी हैं, दानव भी हैं, गन्धर्व भी हैं, प्रेत भी हैं, पिशाच भी हैं, किन्नर भी हैं, बड़े–बड़े साँप भी है, नाग भी हैं, गरुड़ भी हैं, सिद्ध भी हैं, विद्याधर भी हैं। घोड़े भी हैं, हाथी भी हैं, गाय भी हैं, भैंस भी हैं, ऊँट भी हैं, बाघ भी हैं, चीते भी हैं, भालू भी हैं, भेड़िया भी हैं, तड़ख भी हैं, कुत्ते भी हैं, सियार भी हैं, अनेक प्रकार के पक्षी भी हैं, सोना भी हैं, चांदी भी हैं, मोती भी हैं, मणि भी हैं, शंख भी हैं, पत्थर भी हैं, मूंगा भी हैं, चांदी भी है, लाल मणि भी है, शंख भी हैं, पत्थर भी हैं, मूंगा भी हैं, चांदी भी हैं, लाल मणि भी है, मसारगल्ल भी है, वैदूर्य (=हीरा) भी है, वज्र भी है, स्फटिक भी है, लोहा भी है, कांसा भी है। क्षौम वस्त्र भी हैं, कशाय भी है, सूती कपड़ा भी है, टाट भी है, सन का कपड़ा भी है, कम्बल भी है। शाली भी है, धान भी है, जौ भी है, प्रियङ्गु (कागुन) भी है, कुद्रुस (कोदो) भी है, बरका भी है, गेहूं भी है, मूंग भी है, उड़द भी हैं, तिल भी है, कुलत्थ भी है। मूल का गंध भी है, सार (हीर) का गंध भी है, पपड़ी का गंध भी हैं, फल का गंध भी हैं, तथा और भी तरह–तरह के गंध हैं। घास भी हैं, लता भी हैं, तरु भी हैं, वृक्ष भी हैं, औषधि भी हैं, वनस्पति भी हैं। नदी भी हैं, पर्वत भी हैं, समुद्र भी है, मछली और कछुये भी हैं–संसार में सब कुछ हैं।"

"भन्ते! जो संसार में नहीं है, उसे कृपा कर बतावें।"

"महाराज! संसार में तीन चीजें नहीं हैं।"

"वे तीन चीजें कौन सी?"

"महाराज! (1) संसार में अजर–अमर, सचेतन वा अचेतन कोई भी नहीं है, (2) संस्कारों की नित्यता नहीं है, और (3) परमार्थतः कोई जीव या आत्मा (ऐसी वस्तु) नहीं है। महाराज संसार में ये तीन चीजें नहीं हैं।"

पदार्थों की उत्पति एवं प्रवाह

राजा बोला– "भन्ते! क्या ऐसे संस्कार हैं, जो उत्पन्न होते हैं?"

"हां, हैं।"

"वे कौन से हैं?"

"महाराज! चक्षु और रूपों के रहने से चक्षु–विज्ञान उत्पन्न होता है। चक्षु–विज्ञान के होने से चक्षु–स्पर्श होता है। उससे वेदना होती है। वेदना से तृष्णा होती है। तृष्णा के होने से उपादान होता है। उपादान के होने से भव होता है। भव के होने सै जन्म–ग्रहण होता है। जन्म–ग्रहण होने से बुढ़ापा, मरना, शोक, पीटना, दुःख, बेचैनी और परेशानी होती है। इस तरह केवल दुःख ही दुःख होता है।"

महाराज! चक्षु और रूपों के नहीं रहने से चक्षु–विज्ञान नहीं उत्पन्न होता। स्पर्श नहीं होता। वेदना नहीं होती। तृष्णा नहीं होती। उपादान नहीं होता। भव नहीं होता। जन्म–ग्रहण नहीं होता। बुढ़ापा, मरना नहीं होता। इस तरह, दुःख के सारे प्रवाह से मुक्ति हो जाती।"

"वही चीजें पैदा होती हैं, जिनकी स्थिति का प्रवाह पहले से चला आता है।"

राजा बोला– "भन्ते! क्या ऐसे संस्कार हैं, जो नहीं होकर भी पैदा हो जाते हैं?"

"महाराज! ऐसे कोई संस्कार नहीं है, जो नहीं होकर भी पैदा हो जाते हैं। वे ही संस्कार पैदा हो जाते हैं। वे ही संस्कार पैदा होते हैं, जिनका प्रवाह पहले से चला आता है।"

कृपया उपमा देकर समझावें।

"महाराज! आप जिस घर में बैठे हैं, क्या इसके अस्तीत्व में आने के कारणों को बता सकेंगे?"

"भन्ते! ऐसी कोई भी चीज नहीं है, जो बिल्कुल नहीं होकर भी अस्तीत्व में आ जाती है। वही चीजें पैदा होती हैं, जिनका प्रवाह पहले ही से चला आना है।"

ये लकड़ियाँ पहले जंगल में मौजूद थीं। यह मिट्टी पहले जमीन में थी। स्त्री और पुरुषों की मेहनत से ही यह घर तैयार हुआ है।"

"महाराज! इसी तरह, कोई भी संस्कार नहीं हैं, जो न होकर पैदा हुए हो। वे ही संस्कार पैदा होते हैं, जिनका सिलसिला पहले से चला आता है।"

कृपया फिर भी उपमा देकर समझावें।

"महाराज! सभी पेड़–पौधे पृथ्वी से ही उगकर बढ़ते, बड़े होते और फूलते–फलते हैं। ये सभी न होते हुए नहीं पैदा हो गए, बल्कि इनकी स्थिति का प्रवाह पहले ही चला आता है।"

"महाराज! इसी तरह ऐसी कोई भी चीज नहीं है, जो बिल्कुल नहीं होकर हो जाती है। वही चीजें पैदा होती हैं, जिनका प्रवाह पहले ही से चला आता है।"

कृपया फिर भी उपमा देकर समझावें।

"महाराज! कुम्हार जमीन से मिट्टी खोद इससे अनेक प्रकार के बर्तनों को गढ़ता है। वे बर्तन न होकर नहीं हो जाते हैं, किंतु उनकी स्थिति का प्रवाह मिट्टी से चला आता है।"

"महाराज! इसी तरह, ऐसे कोई संस्कार नहीं है, जो न होते हुए भी पैदा होते हैं।"

"राजा बोला– "भन्ते! जो ये पंच आयतन (आंख, कान, नाक, जीभ और त्वचा) हैं, वे क्या नाना कर्मों के फल से हुए हैं या एक कर्म के फल से?"

"महाराज! नाना कर्मों के फल से, एक कर्म के फल से नहीं।"

कृपया उपमा देकर समझावें।

"महाराज! कोई आदमी एक ही खेत में पांच प्रकार के बीजों को बोए, तो क्या उन अनेक बीजों के फूल भी अनेक नहीं होंगे?"

"हां भन्ते! अनेक प्रकार के बीजों के फल भी अनेक प्रकार के होंगे।"

"महाराज! इसी तरह, जो ये पांच आयतन हैं, वे दूसरे–दूसरे कर्मों के फल हैं, एक ही के नहीं।"

"भन्ते! आपने ठीक कहा।"

जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म

मनुष्य ने जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म के प्रति अपनी जिज्ञासा को सभ्य समाज के विकास के साथ प्राप्त किया है। राजा मिलिन्द ने नागसेन से जानना चाहा कि क्या मृत्यु के बाद फिर जन्म होता है?, पुनर्जन्म क्या है?, यह सवाल जितना सीधा है उससे कहीं ज्यादा कठिन है इसका उत्तर और इस उत्तर से समाज पर पड़ने वाला प्रभाव। इस सवाल और इसके समाधान से कोई समाज कितना प्रभावित हो सकता है इसे वर्ण और जाति के सामाजिक विधान से समझा जा सकता है। वर्णवाद के पीछे जन्म का सिद्धांत भारतीय समाज को सदियों से आपस में बाँटे हुए है। अनेक जातियों में बंटा भारतीय समाज आज भी वर्णवाद का शिकार होकर अभिषप्त एवं अधिकार विहीन जीवन जीने को मजबूर हैं। वर्णवाद के खिलाफ खड़े नागसेन ने मिलिन्द के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा कि महाराज! यदि मेरी संसार में आसक्ति लगी रहेगी, तो मैं जन्म ग्रहण करूँगा अन्यथा नहीं। यह उत्तर दार्शनिक है परन्तु समाज में इसकी व्याप्ति सहज है। जीवन के प्रति आसक्ति रखने वाले वही व्यक्ति होते हैं जिन्हें समाज तथा लोक के लिए कुछ विशेष करने कि, जन सामान्य के दुःख, क्लेश दूर करने के साथ समता, प्रेम तथा भाईचारे का वातावरण देने में सक्रीय रहे हैं। ऐसे व्यक्ति यदि पुनर्जन्म की इच्छा करें तो वह अन्यों को भी अच्छा बनने की प्रेरणा देता है।

पुनर्जन्म के संबंध में राजा मिलिन्द ने भिक्खु नागसेन से प्रति प्रश्न किया 'क्या बिना संक्रमण के पुनर्जन्म होता है?'

नागसेन ने उत्तर देते हुए कहा कि "हाँ महाराज! बिना संक्रमण (आत्मा का एक शरीर से निकल कर दूसरे शरीर में जाना।) के पुनर्जन्म होता है।"

मिलिन्द ने पुनः सवाल किया "भन्ते! कैसे होता है? कृपया उपमा देकर समझाएँ।"

नागसेन ने तर्कपूर्ण ढंग से समझाते हुए कहा कि महाराज! यदि कोई बत्ती दूसरी बत्ती को जला ले, तो क्या यहाँ पहली बत्ती दूसरी बत्ती में संक्रमण (प्रवेश) करती है? नहीं करती है।

परन्तु अनात्मवाद के साथ पुनर्जन्म को कैसे जोड़ा जाय? नया सवाल खड़ा होता हैं कि जब आत्मा नहीं होती तो कौन उत्पन्न होता है? क्या वह वही व्यक्ति होता है या अन्य? नागसेन द्वारा इस शंका का तर्कपूर्ण समाधान अद्‌भुत है। नागसेन कहतें हैं-"न तो वह वही होता है और न अन्य ही।" उदाहरण देते हुए वे कहते हैं- जब पुरुष बच्चा होता है और जब तरुण, फिर युवा होता है तो क्या तरुण, युवा, बालक सब अन्य हैं? वस्तुतः सत्य यह है कि धर्मों के लगातार प्रवाह से, एक उत्पन्न होता है, दूसरा निरुद्ध होता है और यह सब ऐसे होता है जैसे मानो युगपद एक-साथ हों। इसलिए न तो सर्वथा उसी की तरह और न सर्वथा अन्य की तरह, एक जीवन की अंतिम चेतनावस्था के लय होने पर दूसरे जन्म की प्रथम चेतनावस्था आ जाती है।

नागसेन ने सहज तर्क से यह सिद्ध किया कि वर्ण व्यवस्था की अनुष्ठानमूलक आस्था तथा आत्मा की वर्णवादी व्याख्या निराधार है क्योंकि आत्मा जैसी कोई चीज नहीं होती।

नागसेन ने उत्तर में कहा "महाराज! जैसे प्रकृति में व्याप्त समस्त वनस्पतियाँ एक जैसी नहीं होतीं। कोई मीठी, कोई खट्टी, कोई तीखी, कोई कसैली होती है, उसी तरह सभी मनुष्य अपने-अपने कर्मों के आधार पर अलग-अलग होते हैं। सभी अपने-अपने कर्मों का भोग करते हैं। मनुष्य का अपना ही कर्म अपना होता है। उनका अपना ही कर्म अपना बंधु होता है, आश्रय होता है, कर्म से ही लोग अच्छे या बुरे होते हैं।"

नागसेन के अनुसार जाति या वर्ण व्यक्ति के कर्म से होना चाहिए बाकि जन्म के आधार पर इस प्रश्नोत्तरी में निहित वर्ण चेतना का आधार जन्मना न होकर कर्मणा है। कर्म और श्रम मनुष्य के सफ़ल जीवन का प्रमुख आधार है। इनके बिना मनुष्य की कोई पहचान नहीं है।

ज्ञान और विवेक

मिलिन्द ने नागसेन से प्रश्न किया कि "भन्ते! ज्ञान और विवेक दोनों एक हैं या अलग?"

नागसेन ने कहा "महाराज! विवेक दूसरी ही चीज है और ज्ञान दूसरी ही चीज। मनुष्य और जानवर में मुख्य फ़र्क ज्ञान और विवेक का है। गाय, बैल, गधे, घोड़े आदि जानवरों को विवेक तो है किन्तु ज्ञान नहीं है। महाराज! 'बोध का होना' विवेक की पहचान है और 'काटने की शक्ति का होना' ज्ञान की पहचान है।" इस तथ्य को उदाहरण सहित समझाते हुए नागसेन ने कहा "महाराज! जैसे यव की कटनी करने वाले बाएँ हाथ से हँसिया पकड़ते हैं और दाहिने हाथ से हँसिया लेकर यव की बाली को काटते हैं वैसे ही योगी विवेक से अपने मन को पकड़ कर ज्ञान से क्लेशों को काटते हैं।"

प्रकृति ने समस्त प्राणियों को विवेकरूपी अनुपम निधि प्रदान की है। मनुष्य अपने विवेक के विस्तार के लिए निरंतर ज्ञान की तलाश में लगा रहता है। ज्ञान मनुष्य की ऐसी पूँजी है जो उसे अन्य प्राणियों से अलग करता है और मनुष्य को विशिष्ट बनाता है। इस तथ्य को नागसेन ने अत्यंत सुगम ढंग से अभिव्यक्त किया है।

ज्ञान और प्रज्ञा

मिलिन्द ने नागसेन से पूछा "भन्ते! ज्ञान और प्रज्ञा दोनों एक हैं? नागसेन ने समझाया "महाराज! हाँ एक हैं। मनुष्य जिन विषयों का अपनी प्रज्ञा से ज्ञान लेता है उसके प्रति उसे मोह नहीं रह जाता। जिन विद्याओं को उसने नहीं पढ़ा है, जिन देशों में वह नहीं गया है तथा जिन बातों को उसने नहीं सुना है, उन विषयों में उसे मोह होगा, क्योंकि ज्ञान के उत्पन्न होते ही मोह चला जाता है। महाराज! जो कुछ काटा जा सकता है, प्रज्ञा से ही काटा जा सकता है और ऐसा कुछ भी नहीं है जो प्रज्ञा को काट सके।"

प्रज्ञा, ज्ञान की वह अवस्था है जो मनुष्य को अनित्य, दुःख और अनात्म के सत्य का बोध कराती है और इनके प्रति मोह को खत्म करती है। मोह व्यक्ति की सबसे बड़ी कमजोरी है। इसके कारण वह मोहग्रस्त न्याय और व्यवहार करता है। जिससे समाज और राष्ट्र के प्रति वह अपनी जिम्मेदारियों का वास्तविक निर्वाह नहीं कर पाता।

स्मृति से स्मरण होता है

मिलिन्द- "भन्ते! बीत गई बातों को हम कैसे स्मरण करते हैं?"

नागसेन- "स्मृति से।"

मिलिन्द- "भन्ते! स्मृति से नहीं, चित्त से स्मरण करते हैं।"

नागसेन- "क्या आपने कभी किसी बात को भुला दिया है जिसे स्वयं ही पहले कर चुके हैं?"

मिलिन्द- "हाँ, भन्ते!"

नागसेन- "क्या आप उस समय बिना चित्त के हो गये थे?"

मिलिन्द- "नहीं, भन्ते! उस समय स्मृति नहीं थी।"

नागसेन- "स्मृति से ही स्मरण होता है, चित्त से नहीं। स्मृतियाँ मन से भी उत्पन्न होती हैं और बाहर से भी उत्पन्न होती हैं।"

मिलिन्द- "स्मृति बाहर से कैसे उत्पन्न हो सकती है?"

नागसेन- "महाराज! यदि बाहर से स्मृतियाँ नहीं होतीं तो शिल्पों को दूसरे से सीखना पड़ता और गुरु सभी निरर्थक हो जाएँगे। महाराज! कुल सोलह प्रकार की स्मृतियाँ होती हैं।

1. जानने से, 2. बाहर की बातों से, 6. किसी बड़ी बात के घटने पर, 4. आनंदित होने से, 5. कोई दुःख पाने से, 6. दो वस्तुओं में समानता या असमानता होने से एक को देखने पर दूसरे की भी स्मृति हो जाती है, 7. दूसरे के कहने से, 8. किसी चिह्न को देखकर। .....आदि।"

स्मरण जैसे विषय को सहज तर्क से नागसेन ने स्पष्ट करते हुए मिलिन्द की अवधारणा को बदला। इस वार्ता से यह स्पष्ट होता है कि हमारे भीतर स्मृति कब और कैसे आकार लेती है। स्मृति मानव जीवन का सहज व्यवहार है, जिसकी अनुपस्थिति से मनुष्य का समस्त संचित ज्ञान नष्ट हो सकता है। वह हमारे ज्ञान को निरंतर बेहतर बनाती है। इसके महत्व को रेखांकित करते हुए नागसेन ने स्पष्ट किया कि हम जो कुछ पढ़ते, लिखते और सीखते हैं वह हमारे पास स्मृति के रूप में रक्षित रहता है।

चक्षु-विज्ञान और मनोविज्ञान

मिलिन्द प्रश्न "भन्ते! जहाँ-जहाँ चक्षु-विज्ञान उत्पन्न होता है वहाँ क्या मनोविज्ञान भी उत्पन्न होता है?

नागसेन- "हाँ, महाराज! वहाँ मनोविज्ञान भी उत्पन्न होता है। व्यवहार से जहाँ-जहाँ चक्षु-विज्ञान उत्पन्न होता है, वहाँ-वहाँ मनोविज्ञान भी उत्पन्न होता है। जहाँ मनोविज्ञान होता है, वहाँ स्पर्श (छूना) भी होता है, वेदना (अनुभव करना) भी होती है, संज्ञा (पहचानना) भी होती है, चेतना (समझना) भी होती है, वितर्क (किसी कार्य में लग जाना) भी होता

है, विचार (अनुमार्जन) भी होता है, विज्ञान (जान लेना) भी होता है। महाराज! मुद्रा, गणना, संख्या और लेखा इत्यादि शिल्पों में नवसिखिया बार-बार व्यवहार करने पर उसकी भूलें जाती रहती हैं। इस प्रकार व्यवहार से जहाँ-जहाँ चक्षु-विज्ञान उत्पन्न होगा, वहाँ-वहाँ मनोविज्ञान भी उत्पन्न होगा।"

इस तथ्य को नागसेन ने सोदाहरण समझाते हुए कहा जैसे पानी ढालू जमीन पर बहता है, गाड़ीवान पहले से गुजरी हुई गाड़ी की लीक को देखकर अपनी गाड़ी उसी दिशा में बढ़ा देता है। इसी तरह चक्षु-विज्ञान उत्पन्न होता है, वहाँ मनोविज्ञान भी उत्पन्न होता है।

मिलिन्द और नागसेन के बीच हुए सहज संवाद का विषय गंभीर है, परन्तु संवाद की भाषा सहज है। प्रश्नोत्तरी शैली में प्रस्तुत तर्क और उदाहरण आम जीवन से जुड़े हुए हैं, जिसके फलस्वरूप संवाद का गंभीर और सूक्ष्म विषय आसानी से हमारी समझ का हिस्सा हो जाता है। मिलिन्द और नागसेन के संवाद को पढ़ते हुए लगता है कि हम इस संवाद के साक्षी हैं।

6.4 मिलिन्द-प्रश्न : प्रामाणिकता और महत्व

भारतीय साहित्य में 'मिलिन्द प्रश्न' पुस्तक की अपनी अलग पहचान है। इस पुस्तक का लेखक कौन है? इसकी कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती। लेखकविहीन इस पुस्तक का कितना महत्व है, इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक 'बुद्धघोष' ने अनेक तथ्यों की पुष्टि के लिए 'मिलिन्द प्रश्न' को प्रमाण माना है। बौद्ध साहित्य में जो महत्व 'त्रिपिटक-ग्रंथों' का है उससे कम 'मिलिन्द प्रश्न' का नहीं है। साहित्य और दर्शन दोनों दृष्टियों से यह ग्रंथ बौद्ध धर्म का विशिष्ट गौरव ग्रंथ है। पाश्चात्य विद्वानों ने इसमें ग्रीक प्रभाव को ढूंढने की कोशिश की है। मिलिन्द और नागसेन का संवाद ऐतिहासिक सत्य है, इसके लिए इतिहास सम्मत सामग्री उपलब्ध है। अधिकतर विद्वानों का मानना है कि राजा मिलिन्द का शासन-काल प्रथम शताब्दी ईसवी-पूर्व था और इसी समय 'मिलिन्द प्रश्न' ग्रंथबद्ध हुआ होगा। राजा मिलिन्द द्वारा जारी किए गये सिक्के और इन सिक्कों पर अंकित धर्म-चक्र मिलिन्द के बौद्ध होने का प्रमाण है। ग्रीक इतिहासकार प्लूटार्क ने मेनाण्डर के संदर्भ में लिखा है कि उसके मरने के बाद अनेक भारतीय नगरों में उसकी अस्थियों पर समाधियाँ बनायी गयीं। अतः ग्रंथ के प्रथम तीन अध्यायों को मौलिक माना है। इस ग्रंथ के महत्व का अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि इसका उपलब्ध अनुवाद चीनी और सिंघली भाषा में मिलता है। 'मिलिन्द प्रश्न' पुस्तक से यह स्पष्ट होता है कि मिलिन्द और नागसेन दोनों ने ही ज्ञान को नये सिरे से खोजने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। वे ज्ञान को पाने, प्रश्नांकित करने और प्रामाणिक तथ्यों के आधार पर ज्ञान को विवेकपूर्ण तरीके से आगे बढ़ाने की परंपरा के सुखद अहसास के रूप में महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय हैं।

6.5 सारांश

महात्मा गौतम बुद्ध ने अहिंसा को मनुष्य जीवन का सर्वश्रेष्ठ विचार मानते हुए मध्यम मार्ग की स्थापना की। निरंजना नदी के किनारे उन्होंने ग्राम्य युवतियों को आपस में वार्ता करते हुए सुना कि वीणा के तार को इतना भी नहीं कस देना चाहिए कि वह टूट जाए और इतना भी ढीला नहीं करना चाहिए कि वीणा बज ही न सके। इस वार्ता ने बुद्ध की विचार श्रृंखला को बदल दिया। कहते हैं कि इस वार्ता से प्रेरित हो बुद्ध ने मध्यम मार्ग की शिक्षा दी। इस घटना से यह स्पष्ट होता है कि ज्ञान वह है जो पढ़कर ही नहीं देखकर, सुनकर,

अनुभव से प्राप्त होता है। सच्चा ज्ञान वह है जो हमसे हमेशा संवाद करता है। 'मिलिन्द प्रश्न' पुस्तक में ज्ञान के संवाद की इस वृहद और समृद्ध परंपरा का निर्वाह किया गया है। मिलिन्द और नागसेन का संवादी व्यक्तित्व आपस में एक दूसरे को प्रभावित करता है। मिलिन्द के प्रश्नानुकूल मन से निकली सहज जिज्ञासा सहजता से शांत नहीं होती। नागसेन भी ज्ञान की मौजूद श्रृंखला को प्रश्नांकित करते हुए तर्क और न्याय के समीकरण के साथ ज्ञान को नये सिरे से प्राप्त करते हैं। मिलिन्द नागसेन के लिए और नागसेन मिलिन्द के लिए चुनौती हैं। प्रश्नांकन दोनों की विशेषता है।

राजा मिलिन्द और भिक्खु नागसेन का ऐतिहासिक संवाद महज बौद्ध दर्शन की सहज व्याख्यात्मक प्रस्तुति नही है। इस संवाद में उपलब्ध सहज जीवन दर्शन, संवाद का स्वर, तर्क आदि आम जीवन के सरोकार से जुड़े हुए हैं। 'मिलिन्द' राजा के अहं, अधिकार और वर्चस्व से युक्त होकर भिक्खु नागसेन से संवाद करने नहीं जाते। 'नागसेन' भी जान के अहं, सर्वज्ञ और अजेय के बोध से युक्त नहीं दिखते। वस्तुतः दोनों विद्वान शास्त्रार्थ की भूमि पर अपने समस्त विशेषण को त्यागते हुए अनुसंधानकर्ता की तरह ज्ञान की पुनः खोज करते हैं। दोनो के बीच संवाद का संबंध जिज्ञासु और ज्ञानी का नहीं है (अगर ऐसा होता तो यह संवाद मात्र प्रवचन होता)। दोनों विद्वान तर्क और न्याय की कसौटी पर एक दूसरे के संवाद को कसते हैं। इस तरह इनके संवाद में सहमति/असहमति का विवेक बनता है।

मिलिन्द और नागसेन के बीच संवाद का विषय आम जीवन संदर्भ से जुड़ा हुआ है। जन्म, मृत्यु, आत्मा, पुनर्जन्म, ज्ञान, प्रज्ञा, स्मृति इत्यादि का संबंध जितना ज्ञान की शाखाओं से है उससे कहीं ज्यादा इन विषयों की व्याप्ति सामाजिक जीवन में है। इस रूप में इन विषयों का सामाजिक महत्व और संदर्भ व्यापक है जिसके तलाश की छवियाँ 'मिलिन्द प्रश्न' में मौजूद हैं। इस दृष्टि से मिलिन्द और नागसेन के व्यक्तित्व की तलाश तथा 'मिलिन्द प्रश्न' में आम जीवन के सरोकार की पड़ताल करना इस इकाई का ध्येय है। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि दोनों के बीच हुए शास्त्रार्थ में संवाद की अधिकार मूलक चेतना विद्यमान है जिसे हमारे दौर का लोकतांत्रिक मूल्य कहा जा सकता है।

खंड के प्रश्न

1) 'चार्वाक दर्शन' आदर्शवादी दार्शनिक सिद्धांतों को प्रखर प्रतिपक्ष के रूप में चुनौती देता है, कैसे? सविस्तार चर्चा करें।

2) 'चार्वाक दर्शन' जीवन के यथार्थ का दर्शन है, स्पष्ट करें।

3) ब्राह्मण-पुरोहित प्रेरित कर्मकाण्ड को 'चार्वाक दर्शन' ने कैसे चुनौती दी?

4) 'चार्वाक दर्शन' का स्वर मानवतावादी है, स्पष्ट करें।

5) "पारलौकिक दार्शनिक सिद्धान्त जीवन विरोधी हैं" - चार्वाकवादी मान्यताओं के आलोक में इस कथन की पुष्टि करें।

6) "चार्वाक दर्शन का कोई मूल-ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, विरोधियों द्वारा इसे नष्ट करने के उतावलेपन से इस दर्शन की क्रांतिकारी मान्यताओं का पता चलता है" इस कथन के आधार पर चार्वाक दर्शन के मानवतावादी स्वरों को स्पष्ट करें।

7) "वर्णवादी आभिजात्य और श्रम विरोधी सौन्दर्यशास्त्र के प्रतिपक्ष में भारतीय दर्शन के आरंभिक काल से ही मानवतावादी स्वर प्रखर होने लगते हैं" विषय पर 250 से 300 शब्दों में निबंध लिखिए।

8) पठित पाठ के आधार पर मिलिन्द और नागसेन का परिचय दीजिए।

9) 'मिलिन्द प्रश्न' पुस्तक के महत्व को उद्घाटित कीजिए।

10) नागसेन के तर्कों पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

11) क्या असहमत होना विचारवान होना है?

12) मिलिन्द की जिज्ञासा में निहित जीवन संदर्भों का उल्लेख कीजिए।

13) असहमति के विवेक और असहमति की आस्था में क्या अंतर है?

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

SOH-IGNOU/P.O. 5T/May, 2014

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ISBN : 978-81-266-6665-2